श्रीकृष्ण-सन्देश

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानमें आयोजित
नौका-लीलाकी एक झांकी

श्रीकृष्ण-सन्देश

[धर्म, अध्यात्म एवं संस्कृति-प्रधान मासिक]

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरला

परामर्श-मण्डल

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती
श्रीवियोगीहरि
श्रीजनार्दन भट्ट

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, 'कल्याण'-सम्पादक
डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
श्रीहितशरण शर्मा

*

प्रबन्ध-सम्पादक

श्रीदेवधर शर्मा

सम्पादक

श्रीव्यथितहृदय

*

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा
दूरभाष : ३२८

*

वार्षिक शुल्क

सात रुपये

आजीवन शुल्क

एकसौ इक्यावन रुपये

वर्ष : ३]   फरवरी १९६८   [अंक : ७

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या

मुद्रक : बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान
पावन हृदयके पावन अर्घ्य

हमने कृष्ण-जन्मभूमिके निर्माणाधीन भागवत भवनका अवलोकन किया। भारतके अद्वितीय तीर्थक्षेत्रके गौरवमें यह एक अनिर्वचनीय धाम बनने जा रहा है। इस योजना से हमें मनस्तोष है। आशा है, सभी भारतीय इस योजनाको सफल बनायेंगे। इस योजनाको श्रीकृष्णही सफल बनायेंगे, इसी आशासे हमें अपूर्व आह्लाद होता है।

गोस्वामी व्रजेशकुमार
कांकरौली, राजस्थान

यहाँ आकर ऐसा आभास होता है कि, साक्षात् भगवान्का वास वर्तमानमें भी यहाँ है। आते ही चित्त गद्गद् हो जाता है। इसके जीर्णोद्धारमें जो सहयोग देंगे, निश्चित् ही ईश्वर उनका कल्याण करेगा।

स्वामी धर्मानन्द
परमार्थ-आश्रम, हरिद्वार

मैंने श्रीकृष्णजन्मस्थानके दर्शन किये। स्थान बहुत भव्य है। ऐतिहासिक महत्त्व होने के कारण यह और भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ भागवतभवन, आयुर्वेदभवन तथा अन्य कई चीजें जो बन रहा हैं, वास्तवमें प्रशंसनीय हैं। हम इसके लिये सफलताकी कामना करते हैं।

आनन्दीलाल गोयनका
बिरला ब्रदर्स प्रा० लि०
१५ इण्डिया एक्सचेञ्ज, कलकत्ता

मैंने श्रीकृष्ण जन्मस्थान देखकर स्वयंको गौरवान्वित अनुभव किया। ट्रस्टियोंने जिस उत्साहके साथ इसके निर्माणका संकल्प किया है, उसे भगवान् शीघ्रही पूर्ण करेंगे। मैं आशा करता हूँ, यह देशका सर्वोच्च आदर्श स्मारक बनेगा तथा धर्मका प्रचार होगा।

मोतीलाल ककरानियाँ
रामगोपाल पूरनमल ककरानियाँ
अमरावती (महाराष्ट्र)

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके दर्शनका सौभाग्य मिला। श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार (संपादक-कल्याण) के संरक्षणमें तथा श्रीडालमियाँजीके सतत् प्रयत्नोंसे यह पवित्र अभियान हिन्दू-धर्मकी पवित्र भावनाको जागृत करेगा, यह मेरी पवित्र धारणा है। मानवमात्रका तन, मन, धन से सहयोग अपेक्षित है।

गनपतराय धानुका
पो० गोहाटी (आसाम)
मन्त्री, आसाम प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन (शिक्षाकोष)

धन्य है भगवान् की माया ! मानो सैकड़ों वर्ष बाद फिर उनका आविर्भाव हुआ है। युग-युग जिये यह जन्मभूमि।

बद्रीसिंह,
ज्वाइण्ट सेक्रेटरी (कृषि)
शास्त्रीभवन, नई दिल्ली

इस पवित्र कृष्ण-जन्मस्थानके दर्शन करके मुझे विशेष आनन्द हुआ। तनसे, मनसे और धनसे जिन सज्जनोंने इस भूमिका जीर्णोद्धार और व्यापक विस्तार करनेमें मदद की है, और अबभी करते हैं वे धन्य हैं। भक्त सज्जन इस स्थानसे प्रेरणा प्राप्त करके कृष्णभगवान्के गुणोंका समावेश करके निजी कल्याण करेंगे।

फूलचन्द गोयल
रिटायर्ड कमिश्नर इन्कमटैक्स
२ A। २०८ आनन्दनगर, कानपुर

श्रीकृष्णकी जन्मभूमिके दर्शन करके हृदयको शान्ति मिली। यह पुनरुद्धारका महान् प्रयास पौराणिक दृष्टिसे भावी भारतके ऐतिहासिक और धार्मिक अनुसन्धानकेलिए अत्यन्त लाभप्रद रहेगा और सदैवकेलिये यात्रियोंको एक प्रेरणा देगा और श्रीमद्भगवद्गीताके उपदेशोंके प्रचारका स्रोत बना रहेगा।

पुरुषोत्तमलाल सुखवाल
अधिकृत नियन्त्रक
मेटेम्स भीलवाड़ा (राजस्थान)

यह स्वाभाविक है कि, इस पुण्य स्थान पर आकर मनमें तरह-तरहके विचार उत्पन्न हों। श्रद्धा और भक्तिके भावको महत्त्व देते हुए इस स्थानकी उन्नतिके लिये जो सेवा बन सके करना, मनुष्यमात्रका धर्म है।

सुखदेवप्रसाद
जिला जज, रीवाँ

श्रीकृष्ण जन्मस्थान-मन्दिरको देखकर बड़ा प्रभावित हुआ हूँ। ऐसा मन्दिर भारत में अब तक नहीं बना है। निर्माणकर्त्ताओंका मैं हृदयसे साधुवाद करता हूँ।

रामनिवास वैद्य
पिलानी, राजस्थान

आज मैंने सपत्नीक जन्मस्थान-मन्दिरके दर्शन किये। भगवान्की मूर्ति दिव्य है, अतीव सुन्दर है, सजीव है, बरबस भक्ति-प्रेमसे मन भर जाता है। जन्मस्थानपर निर्माण-कार्य बड़े सुचारु रूपसे हो रहा है, यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस मन्दिरके उत्सव ऑलइण्डिया रेडियोपर भी आने चाहिये। मेरे सहयोगकी आवश्यकता हो तो मैं आभारी होऊँगा। इसकी प्रतिलिपि यहाँके स्टेशन डाइरेक्टरके पास भी भेज दी जाय।

श्रीयोगेन्द्रनाथ वर्मा
संयुक्त सचिव, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय
नई दिल्ली

श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।

वर्ष ३] मथुरा, फरवरी १९६८ [अङ्क ७

अच्युत-वाणी

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःख दुःखितम् ।।

—जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ। जब वह निर्धन होजाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसके दुःखाकुल चित्तकी परवाह न करके उसे छोड़ देते हैं।

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया ।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ।।

—फिर वह धनकेलिये उद्योग करने लगता है, तब मैं उसका वह प्रयत्न भी निष्फल कर देता हूँ। इस प्रकार बार-बार असफल होनेके कारण अब धन कमानेसे उसका मन विरक्त होजाता है, उसे दुःख समझकर वह उधरसे अपना मुँह मोड़ लेता है और मेरे प्रेमी भक्तोंका आश्रय लेकर उनसे मेल-जोल करता है, तब मैं उसपर अपनी अहेतुक कृपाकी वर्षा करता हूँ।

तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ।
अतो मां सुदुराराध्यं हित्वान्यान् भजते जनः ।।

—मेरी कृपासे उसे परम सूक्ष्म अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्मकी प्राप्ति होजाती है। इस प्रकार मेरी प्रसन्नता, मेरी आराधना बहुत कठिन है। इसीसे साधारण लोग मुझे छोड़कर मेरे ही दूसरे रूप अन्यान्य देवताओं की आराधना करते हैं।

[श्रीमद्भागवत १०।८८।८-१०]

शूरताकी परमावधि भगवान् श्रीकृष्णके
शौर्य भावका चित्रण

"कालियके सिर एक दो नहीं, पूरे एक सौ थे। इतने समस्त सिर भी एक-दो बार नहीं, सहस्रों वार ही नृत्यके रंगमंच बने। सौ सिर और दो चरण! साँपको सिर उठाने में देर ही क्या लगती है और वह भी जब उठानेको सौ सिर हों। किन्तु सिर उठे नहीं कि, चरण उस पर आ धमके। गतिकी तीव्रता एवं क्षिप्रताका हिसाब लगाते समय सिर चकरा उठता है।"

श्रीकृष्णका शौर्य स्वरूप

डा० श्रीभोलानाथ 'भ्रमर' एम० ए०,
डी० फिल्० डी० लिट्

आइये, भगवान्के वीर स्वरूपका दर्शन और मनन करें। श्रीकृष्णने जब पूतनाको मारा तब वे दूध पीते शिशु थे। पूतना कैसी थी कि उसके मृतांग कुल्हाड़ियोंसे काटने पड़े थे। गोया वह कटा-उखड़ा पेड़ हो, उसके रुदन-नादसे पर्वतों सहित पृथ्वी, ग्रह, तारागण एवं रसातल हिलने लगे थे, दिशाओंमें गर्जना हो उठी थी। उसका रूपदर्शन करें—हलके समान लम्बी दाढ़ें, पर्वतकी गुफाके समान नाक, पर्वतकी कनपटीके समान स्तन, अन्ध-कूपके समान केश, तटके समान भयकारी नितम्ब, बँधी हुई सड़कके समान भुजायें और सूखे तालाबके समान पेट था। पर्वतकी चोटीको कोई दबा सकता है क्या? किन्तु इस आश्चर्योत्पादक शिशु ने उसे ऐसा दबाया कि पूतना न केवल 'मृत्यु-मृत्यु, अलम् इति' ही चिल्लाने लगी, वरन् 'निस्पीडयमानाखिल जीव मर्मणि, विवृत्यनेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः, प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोदह' "व्यथितस्तना'—वृत्रासुरके समान निष्प्राण होकर गिर पड़ी। ऐसे अद्भुत कार्यसे श्रीकृष्णके जीवनका प्रारम्भ हुआ था।

पालनेमें लेटे-लेटे इस अद्भुत शिशुने वह शकट तोड़ डाला, जिसमें अनेक रसोंसे भरे हुए काँसे आदिके बर्तन रक्खे थे। उसका पहिया, धुरी, जुआड़ा सब टूट गया। फिर तृणावर्त को मारा। इन तीन अद्भुत कार्योंके करनेके पश्चात् श्रीकृष्ण इतने बड़े हुए कि उनका नाम-करण हुआ। ऊखल बन्धन लीला हुई अर्थात् यमलार्जुनको मोक्ष मिला, अघासुर मारा गया, ब्रह्माका गर्व तोड़ा, धेनुकासुरकी मौत हुई, कालीय नागको नाथा गया, दावाग्निसे व्रजवासियों की रक्षाकी, नन्दजीको वरुण-गृहसे छुड़ाकर लाया गया, सर्पसे ग्रसित नन्दकुमारोंको छुड़ाया गया, एक मुक्केमें शंखचूड़का सिर तोड़ा गया। जिसका घोर शब्द सुनते ही गौओं तथा

स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते थे और जिसे पहाड़ समझकर बादल उस पर बैठ जाते थे—ऐसे वृषभासुरको मारा गया, सिंहके समान गरजनेवाले, गुफाके समान मुखवाले केशीको मारा गया एवं व्योमासुरकी मृत्यु हुई। इसके पश्चात् इस अवस्थाका अन्तिम संघर्ष कुवलयापीड़, चाणूर, शल और कंसका बध है।

कालीय नाग दमन-प्रसंगमें श्रीकृष्णका अद्‌भुत कार्यकलाप देखने योग्य है। कालीदह इतना भयानक था कि उसके विषैले जलकी तरंगोंके छींटोंसे मिले हुए पवनके स्पर्श मात्रसे स्थावर जंगम मर जाते थे। ऐसा भयानक विषाक्त जलभी श्रीकृष्णका कुछ न बिगाड़ सका। श्रीकृष्ण जब उस दहमें कूदे तो वह जल सौ-सौ धनुष यानी अठारह-अठारह सौ गज तक फैल गया। अब कालियने श्रीकृष्णको मर्मस्थानमें काट लिया और उनके अङ्गसे लिपट गया। जिसके विषसे विषाक्त जलकी छींटोंसे पवनका झोंका स्थावर-जंगमको मार सकता था, उसके काटने पर भी श्रीकृष्णका कुछ न बिगड़ा, वे केवल निश्चेष्ट हो गये। फिर श्रीकृष्णने अपना शरीर बढ़ाया और कालीय बेचैन होकर श्रीकृष्णको छोड़नेपर विवश हो गया। दशा यह थी कि वह फनको उठाकर फुंकार मारता था, उसकी नाकसे विष निकल रहा था, आँखें फटी-फटी थीं, मुंहसे आग निकल रही थी और वह दोनों जीभोंसे ओठ चाट रहा था। श्रीकृष्णने पहली मुठभेड़में ही बाजी मार ली। अब श्रीकृष्ण उसके चारों ओर फिरने लगे और वह भी अवसरकी प्रतीक्षा करता हुआ उनके चारों ओर फिरने लगा। इस दौरमें भी श्रीकृष्ण जीते और उसका पराक्रम नष्ट हो चला। अब देखिए, कितना साहसपूर्ण और भयानक कार्य है कि श्रीकृष्ण उसके मोटे फनोंको झुकाकर उसपर चढ़ गये। साँपके फन, नाग साँपके फन, नागराजके फन, वह भी जीवित नागराजके फन, प्रतिकारकेलिये क्रोधसे पागल नागराजके फन। माँसके थोड़ेसे लचीचे टुकड़े। जिसमें कड़ापन नहीं, जो स्थिर नहीं, जो मनुष्यके पैर इतना भी लम्बा-चौड़ा नहीं-उसपर नृत्य। किन्तु वाहरे, ! महाशूर ! महान् पुरुष ! नाग जिस फनको भी ऊपर उठाता था, वे उसे ही कुचल देते थे। अब नागके मुख और नाकसे रक्त बहने लगा, ऊंची साँसें लेता और नेत्रोंसे विष उगलता। किन्तु वह सर्प-सिर-कुचल नृत्य रुका नहीं। भगवान्‌के चरण-संचालनकी तीव्रता और शरीर संतुलनकी अलौकिकता ! मैं सोचता हूँ कि उन्होंने नृत्य करते-करते सिर नहीं कुचला, बल्कि एक सिरसे दूसरे सिरपर जानेकी अद्‌भुत क्रिया की, क्योंकि कालीके सिर एक-दो नहीं, पूरे एक सौ थे। इतने समस्त सिरभी एक-दो बार नहीं, सहस्रों बार ही नृत्य के रंगमंच बन गये। सौ सिर और दो चरण। साँपको सिर उठानेमें देर ही क्या लगती है और वह भी जब उठानेको सौ सिर हों। किन्तु सिर उठे नहीं कि चरण उसपर आ धमके। गतिकी तीव्रता एवं क्षिप्रताका हिसाब लगाते समय सिर चकरा उठता है।

श्रीकृष्णके शौर्य-भावका और दृष्टांत लीजिये—श्रीकृष्ण कंसके रंगद्वार पर उपस्थित हैं। कुवलियापीड़ हाथी खड़ा है। महावत उसे संकेत कर रहा है—सामने कुवलयपुंज खड़ा है—कुवलय माने कमल—नेत्र कमल, कर कमल, पैर कमल-कुवलय ही कुवलय हैं। कुवलय-पीड़ आगे बढ़—कुवलियको पीड़ित कर। बेचारे कुवलयपीड़को क्या पता कि यह कैसा कमल है। दौड़कर उसे अपनी सूंड़में दबा लिया। हाथीकी सूंड़में दबा मनुष्य अर्थात् दाँतोंसे घिरे जीभपर रक्खा हुआ ग्रास ! मिटनेमें क्या आशंका ! किन्तु श्रीकृष्णके शरीरकी लचक या

योगीराजकी कला, कि उससे छूटे और अद्‌भुत साहस ऐसा कि घूंसा मारकर उसके पैरोंमें छिप गये। हाथीके पैरोंमें छिपना, हद है आत्मविश्वासकी। लोग हाथीसे दूर भागते हैं और आप उसके नीचे जाते हैं। हाथी फिर उन्हें अपनी सूंड़में लपेटता है। श्रीकृष्ण फिर बलपूर्वक सूंड़से छूटकर बाहर निकल आते हैं और फिर उसकी पूंछ पकड़कर ४५० गज पीछे खींच ले जाते हैं। ४५० गज, १३५० फीट, एक मीलसे ४१० फीट ही कम। आप जानते हैं, किसको घसीट ले गये—जिसके भीतर १००० हाथियोंका बल था और वह भी ऐसे खींच ले गये, जैसे गरुड़ लीलापूर्वक सांपको ले जाता है। हो सकती है कोई अनुभूति श्रीकृष्णके शारीरिक शक्तिकी। महाभारतकार कहते हैं कि जब पाण्डव वनवासमें थे तो एकबार ब्राह्मण पुत्र, गुरु द्रोण पुत्र अश्वत्थामाने द्वारकामें श्रीकृष्णके पास जाकर उनसे उनका चक्र मांगा और बदलेमें ब्रह्मास्त्र देनेको कहा। श्रीकृष्णने कहा—"देखो, ये मेरे धनुष, शक्ति, चक्र और गदा पड़े हैं। इनमेंसे जो-जो अस्त्र लेना चाहो, वही मैं तुम्हें देता हूं। जिसे तुम उठा सको और जिसका युद्धमें प्रयोग कर सको, ले लो और मुझे जो अस्त्र देना चाहते हो, वह भी मत दो।' उसने चक्र लेना चाहा, किन्तु उसे उसके स्थानसे टस-से-मस न कर सका। अश्वत्थामा असाधारण योद्धा था। क्या थी उस चक्रमें जो वह भी न उठा सका! उसमें एक हजार आरे थे, वज्रकी उसकी नाभि थी, और पूरे का पूरा लोहे का था। कितनी शक्ति थी श्रीकृष्णकी उंगलियोंमें, जो वे ऐसा चक्र उसपर नचाते थे, गोवर्द्धन पर्वत सात दिन तक रक्खे रह सकते थे। कंसकी मृत्यु पर जरासंध आया था। उसे १८ बार श्रीकृष्णपर चढ़ाई करनी पड़ी। १७ बारमें उसके ८५५११७० रथ, ८५५११७० हाथी, २५६७०५१० घुड़सवार, ४२७५५८५० पैदल श्रीकृष्णने मारे थे। अठारहवीं बार उसकी सेनामें ३०००००० यवन भी आ गये थे। रुक्मिणी-परिणयके अवसर पर श्रीकृष्णने रुक्मकी २१८७० रथों, २१८७० हाथियों, ६५६१० घोड़ों और १०९३५० पैदलोंकी सेनाका संहार किया था। साम्बवन्तसे २८ दिनोंके मल्लयुद्धमें वे आयुध, पाषाण, वृक्ष और भुजाओंके बल लड़े थे। सात सांड़ोंको एक साथ वशमें करके नाग्नजितीसे व्याह किया था। गदासे पहाड़, बाणोंसे शस्त्रदुर्ग, चक्रसे अग्नि, जल तथा पवन दुर्ग तोड़े, खंडसे मुरपाश काटे। उषा-अनिरुद्ध प्रसंगमें वे महादेवजीसे लड़े थे और उन्हें बेहोश कर दिया था। कृत्याग्निको सुदर्शन चक्रसे प्रतिहत एवं भग्नमुख किया। शतधन्वा, भौमासुर, बाणासुर, पौण्ड्रक, सुदाक्षेण, शिशुपाल, शाल्व, दन्तवक्र, विदरथ आदिका हनन किया। महाभारतके सम्बन्धमें क्या कहें? इतना ही पर्याप्त है कि यदि श्रीकृष्णकी नीति न होती तो पाण्डव महाभारतका एक दिनका युद्ध भी सम्भवतः न जीत पाते। शाल्वके साथ युद्धमें भगवान्‌ने गदासे शाल्वकी पसलियोंपर मारा, जिससे वह रक्त उगलता हुआ कांपने लगा। विमान हजारों टुकड़े तथा चूर्ण होकर जलमें गिर पड़ा, भालेसे शाल्वका गदा सहित हाथ काटा। उनकी एक गदाका नाम कामोद था। पौंड्रक तथा काशिराजकी सेनाके नाशके समय गदा, खड्‌ग, चक्र, बाण आदि सबका प्रयोग श्रीकृष्णने किया था। उनका शार्ङ्ग धनु 'सुरासुरार्चित' (श्रीमद्‌भागवत १०।५०।२३) था और जब जरासंधकी सेनाको मारनेके लिये उन्होंने धनुष चलाया था तो वह 'निरन्तर यद्वदलातचक्रम्' (१०।५०।२५) निरन्तर घूमती हुई मशालके समान दीखा।

प्राचीन ग्रन्थोंमें श्रीकृष्णके विशेषण

श्रीकृष्णके लिये जिन विशेपणोंका प्रयोग श्रीमद्‌भागवतमें किया गया है वे ये हैं—

लोकगुरु, प्रपन्नाम् भयापहम्, घमीवहन्, महायोगिन्, महापुरुष, सत्यते, देव, सर्वलोकेश्वर, अच्युत, प्रमाणरहित स्वरूपवाले, योगेश, जगदीश्वर, अखिल निवास, अन्तर्यामी, सर्वव्याप्त, वृद्धिके साक्षी, ईश्वर, स्वतन्त्र, केवल ज्ञानमूर्ति, अपनी पूर्णानन्द स्थितिसे पूर्णकाम, सत्यसंकल्प, नित्यमायासे निवृत, सब प्रकार के तत्वोंकी कल्पना करनेवाले, अग्रणी, परमेश्वर, अधोक्षज, भक्तवत्सल, नाथ, जगन्नाथ, पुण्यमय श्रवण तथा कीर्तनवाले, उत्तम श्लोक, नारायण, अनघ, अजित, अमिततेजसः, दामोदर, भीतःप्रपन्नार्ति, केशव, अप्रमेयस्वरूप, गोविन्द, निरुपाधि, अमृतकीर्ति, अगाधगोध, भगवांल्लोकभावनः, सत्यसंकल्प, सर्वाधार, शत्रुघ्न, देवदेवेश्वर, पुरुषोत्तम आदि । महाभारतमें उन्हें अपराजित विष्णु, प्रणतार्तिविनाशन, अव्यय, प्रणतपाल, शत्रुदमन, मधुसूदन, जनार्दन, महाबाहो, जिष्णु, विश्वतोमुख, अविनाशी, महान् तेजस्वी, दिव्य और अद्‌भुत शस्त्रवाले रूपमें उपस्थित किया गया है। विष्णुसहस्रनाममें वे शार्ंगधनुवाले, मरीचिः, अमृत्युः, सुरारिहा, सत्यपराक्रमः, सम्प्रमर्दनः, ओजस्तेजोद्युतिधरः, सहस्राजितः, स्कन्दः, पुरन्दरः, शक्तिमतांश्रेष्ठः, अमितविक्रम, शत्रुघ्नः, अन्तकः, जितामित्रः, हलायुधः, सुधन्वा, खण्डपरशुः, दारुणः, अनिवर्ती, शौरिः, शूरजनेश्वरः, केशिहा, रणप्रियः, दर्पहा, अपराजितः, सर्वशस्त्रभृतांवरः, इन्दुकर्मा, महाकर्मा, सर्वविज्जयी, जयन्तः, अक्षोभ्यः, दमयिता, चक्री दक्षिणः, वीतभयः, दुष्कृतिहा, रक्षणः, भयापहः, भूमिः, भीमपराक्रमः, वैखानः, शंखभृत, गदाधरः आदि हैं। गीतामें उन्हें अदितिके बारहों पुत्रोंमें विष्णु, ज्योतियोंमें सूर्य, उन्चास मारुतोंमें तेज, देवोंमें इन्द्र, ग्यारहों रुद्रोंमें शंकर, आठ वसुओंमें अग्नि, यक्षोंमें कुवेर, सेनापतियोंमें स्कन्द, स्थावराणां हिमालयः, आयुधोंमें वज्र, वनचरोंमें केशरी, पक्षियोंमें गरुण, मछलियोंमें घड़ियाल, सर्वहरः मृत्युः, जय या जीत, दमनमें दण्ड, सर्पोंमें वासुकी, शासकोंमें यमराज आदि कहा गया है।

श्रीकृष्णके इन विशेषणोंमें उनकी शूरता अर्न्तानिहित है।

मतवाली मीरा

कमनीय कान्ता कविता-कला प्राण-पीड़ा-सम्पोषिका,
सजीव प्रेम-प्रतिमा प्रकट प्रत्यक्ष प्रमुदिता प्रेमोन्मादिनी।
श्रीकृष्ण-संगमाधीरा तन्मया मधु उपासनानुरक्ता,
मारवाड़-मरु-प्रदेश-प्रवाहिता मीरा मन्दाकिनी॥
काव्य-कानन कलकंठी क्रीड़ा-कला-निपुणा कोकिला,
स्वजन-परिजन-त्यक्ता एकांत-वैराग्य भावानुभूतिता।
श्रीहरिचरण-चितामणि-रमण-सार-ग्रहिता मुदित-हृदया,
भारती-भंडार-भरित्री अमृत-रसा मीरा गीत-गीता॥
नारी-समाज-समुज्ज्वला गौरान्विता साधु-सन्मानिनी,
विश्व मध्य निज नित्य कीर्ति-पताका स्थापिका।
रसिकवर रास-रसिका रसना-रस-सार-प्रसारिका,
श्रीनागर-नेह-नगरी-रमण-रस-रसा मीरा श्रीराधिका॥

श्रीसन्तकुमार टंडन 'रसिक'

"गीताके उपदेशके अनुसार, यदि प्रत्येक मनुष्य कर्तव्य के फलकी आकांक्षा छोड़कर, समताकी दृष्टि से समष्टिके कल्याणकी माला पिरोनेमें अपने को एक मनियाके रूपमें समझे तो इससे संसारकी रचनाही एक नये प्रकारकी, वैभवपूर्ण और सुखदायिनी हो सकती है।"

गीताके श्लोकों में कर्तव्यका महामंत्र

ज्यो० श्रीराधेश्याम द्विवेदी

बहुतसे लोगोंकी यह धारणा है कि, युद्धके प्रसंगमें राग और द्वेषके त्यागका उपदेश देकर, युद्धमें तत्पर—अर्जुन द्वारा उसके निकट सम्बन्धियों और कई अक्षौहिणी सेनाका वध कराना श्रीकृष्णकेलिए उचित नहीं था। ऐसे समय ज्ञान या कर्मकी भावनाका उपदेश किसी प्रकार उपयुक्त नहीं था। यह कहना या दोष लगाना भ्रममूलकही नहीं है, किन्तु गीता और लोक जीवनके परम उद्देश्यको न समझनेका प्रलाप है। जो युद्ध-परायणता गीता से सिद्ध होती है, उस विषय में तो प्रारम्भ में अर्जुनका ही प्रश्न है कि युद्ध करने या अपने सम्बन्धियोंका संहार कर रक्त-रंजित भोगोंको ग्रहण करनेकी अपेक्षा तो भीख माँगकर जीवन निभाना अच्छा है। अर्जुनकी यह मान्यता भूलसे भरी है—यही बताते हुए स्वधर्म और कर्तव्यकी शिक्षाका बोध भगवान् श्रीकृष्णने उसे कराया है।

जीवन किसलिये है, इस प्रश्न पर स्थिरचित्त से विचार करने से यही निश्चय होता है कि आत्मोन्नति, लोकसेवा और समृद्धिकेलिए ही जीवन है। स्थूल समृद्धि और उन्नति अनित्य और क्षणिक है, विश्वक्रममें 'विनाश' जैसी वस्तु है ही नहीं, कारण कि प्रत्येक वस्तु (Object) रूपान्तर करती चली जाती है। प्रतिक्षण, प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष जीवन निरन्तर, बल्कि उत्तरोत्तर वृद्धि (Expansion) और उच्चता (Perfection) की ओर ही जाता है अन्यथा विश्वक्रममें कोई भव्यता, उत्तमता, महत्ता या सारता आ ही नहीं सकती। मृत्यु संज्ञाका जो रूपान्तर विश्व-रचना में ठहराया गया है, उसका उद्देश्य, उसका हेतु शिथिल और व्यर्थ जैसे साधनोंको नवीन करके अधिक उन्नतिके मार्गमें व्यक्ति या समष्टिको चलाना मात्र ही है। सारे विश्वकी व्यवस्था व्यक्ति या समष्टिकी वृद्धि (Expansion), उन्नति या उच्चता (Perfection) का ही बोधक है। गीताजीमें इसी सूत्र का अवलम्बन कर कर्तव्य मार्ग पर चलने या ग्रहण करनेका उपदेश दिया है। कर्तव्य न समझमें आने के कारण उसमें जो अच्छे-बुरे का भेद किया जाता है और पाप-पुण्यकी दीवाल खड़ीकी जाती है, उसीका स्पष्टीकरण कर, कर्तव्यमें ही लोक कल्याणका सार बतानेका प्रयत्न गीता—द्वारा किया गया है।

कर्तव्यही समृद्धि और उन्नतिका मार्ग है। यह कर्तव्य अच्छा है, यह कर्तव्य बुरा है, ऐसी शंकाओंसे कर्तव्य-भ्रष्ट होना अथवा अपने अधिकार से बाहरकी इच्छाओं से अपने कर्तव्य से गिरना अवनति या अधोगति का मार्ग है। यदि अवसर प्राप्त होतेही प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यको पूर्ण करले, तो वह निश्चय ही अपने उन्नतिके मार्गपर अग्रसर होता जायगा। कर्तव्य किये बिना कोई व्यक्ति तो क्या, विश्वका एक अणु भी लेशमात्र उन्नति नहीं कर सकता। कर्तव्यमें रत रहने से ही हमारे हृदयसे वासनायें पृथक होती हैं, वासनायें दूर होते ही विस्तार प्राप्त होता है, विशालता आती है और संकुचित भाव तथा भयके स्थान पर उच्चता और निर्भयताका हृदयमें राज्य स्थापित हो जाता है। कर्तव्य-पालन करनेसे ही व्यष्टि समष्टि भावनाके समीप पहुँचता है और उसमें समताका योग सिद्ध होता है तथा उसके भीतर आत्म साक्षात्कारका तेज प्रकट होता है।

कर्तव्यका बोध होतेही अधिकार-वृद्धिकी सम्भावना स्पष्ट होकर, उन्नतिका प्रशस्त मार्ग प्रकट हो जाता है। यदि अधिकारत्व प्राप्त न हो या कर्तव्यमें कोई कमी रह जाय, तो भी अपने सम्मुख आये हुए कर्तव्यसे विमुख होकर शंका अथवा भयमें कालक्षेप करने से, स्व-कर्तव्य, जो सामने हो, करना ही श्रेयस्कर है। इसीलिए गीता के गायकने एक बार नहीं, अनेक प्रकार से प्रारम्भ में, उपक्रम में, उपसंहार में स्वधर्म-पालनका ही उपदेश दिया है—

"स्वधर्मे निधनं श्रेयो परधर्मो भयावहः"

मनुष्यको कर्तव्य से विमुख करनेवाली उसके हृदयकी संकुचित वृत्ति है। इसीसे लज्जा, भय, शंका, ईर्ष्या, अभिमान, आडम्बर, राग द्वेष आदि भावनायें उत्पन्न होती हैं। जिनके हृदय विशाल, निर्भय, निःशंक, और निरभिमानपूर्ण हैं, उन्हें कोईभी कर्तव्य या कर्म हीन या छोटा प्रतीत नहीं होता है। कर्तव्यसे विमुख रहना किसी भी काल और स्थिति में धर्म नहीं समझा जा सकता है। अर्जुन ने अपने श्रेय-भलेके लिएही अपने हृदय-दौर्बल्यको दूर करनेका प्रश्न श्रीकृष्ण से पूछा है—

"कार्पण्य दोपोपहत स्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म समूढ चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहितन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

हृदयकी संकुचित भावनाको ही उपनिषदों में 'कृपणता', 'श्यामता', 'कलुषिता' या कृपणता कहा गया है। इसी कृपणता का भाव कार्पण्य है। इसी कार्पण्य दोष से स्वभाव में या समष्टिभाव में केवल अपनेपन का आत्मभाव उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा भय, शंका, और संकुचित भाव जाग्रत होते हैं। मनुष्य धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप के भंवर में पड़ जाता है, और उसकी बुद्धि अतिशय मोह में ग्रसित होने के कारण, मोक्ष मार्ग या निःश्रेयस् मार्ग पर नहीं पहुँचती। हृदयके संकोच या दौर्बल्य से ही मोह, शंका, भय इत्यादि उत्पन्न होते हैं और कर्तव्य-भ्रष्टता आ जाती है। इसी से अर्जुन कहता है कि, हे कृष्ण! मैं धर्म के मोहजाल में फँसकर मूढ़ बन गया हूँ। इस समय रुचिकर या प्रिय लगनेवाली बात का विचार न कर, जिससे मेरा हित हो, मेरा श्रेय हो, वही उपदेश मुझे दीजिये। श्रीकृष्णका उत्तर भी इस प्रश्नके अनुरूपही है, जो सारे उपनिषदों के सार गीताशास्त्रमें, समताके सूत्र में कर्तव्य कर्मकी भावनासे युक्त है। श्रीकृष्ण गीताका उपदेश करनेके पश्चात् अर्जुन से पूछते हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेणचेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोह : प्रनष्टस्ते धनजय ॥१८।७२॥

'एकाग्र चित्त से क्या यह सब तुमने सुना और सुनने से क्या अज्ञान जन्य तुम्हारा मोह नष्ट हुआ, अर्थात् प्रारम्भमें बुद्धि-मोह के कारण, धर्म-अधर्म की विवेचना के सम्बन्ध में तुम जो मार्ग नहीं देख रहे थे, वह बुद्धि-मोह, (Delusion) और उस बुद्धि-मोह को पैदा करने वाला कार्पण्य दोष अर्थात् हृदय की कृपणता और दुर्बलता दूर हुई या नहीं ?' भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रश्नका अर्जुन ने भी इसी उपक्रमानुसार उत्तर दिया—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः, करिष्ये वचनं तव ।।१८।७३।।

'हे अच्युत ! बुद्धिको धर्म-अधर्मके चक्करमें डालनेवाला मोह नष्ट हो गया है, मेरे स्वभाव और धर्म में जो दुर्बलता आ गई थी, जिसे मैं भूल रहा था, तुम्हारे प्रसाद से अब स्मृति प्राप्त हुई है । अब मेरा सन्देह दूर हो गया और अब मैं दृढ़ हूँ और तुम्हारी जो आज्ञा होगी, करूँगा ।'

गीताके उपदेशसे अर्जुनके चित्तमें समष्टिकी कल्याणभावनाके रूप कर्तव्यका उदय हो गया । अर्जुन और श्रीकृष्णके प्रश्नोत्तरोंपर विचार करने से स्पष्ट विदित होता है कि सम्पूर्ण गीताका उद्देश्य कर्तव्यकी भावना जागृत करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । यही बात सभी भाष्यकारों ने भी सिद्धकी है । लोकमान्य तिलक ने तो गीताशास्त्रका नामही 'कर्मयोगरहस्य' रक्खा है । कर्तव्य या कर्ममें ऊँच-नीच और किसीभी प्रकारके फलकेलिए स्थान नहीं है । मनुष्यको केवल अपने कर्तव्य या कर्मको समझना चाहिए और समझकर उसे अपने आचरणमें लाना चाहिए । गीताके उपदेशके अनुसार यदि प्रत्येक मनुष्य कर्तव्यके फलकी आकांक्षा छोड़कर, समताकी दृष्टि से समष्टिके कल्याणकी माला पिरोने में अपनेको एक मनियाके रूपमें समझे तो इससे संसारकी रचनाही एक नए प्रकार की, वैभवपूर्ण और सुख-दायिनी हो सकती है । प्रतारण, क्लेश, विग्रह आदि जो राग-द्वेष जन्य स्वार्थ-युक्त व्यापार हैं, नष्ट हो सकते हैं, और उनके स्थानपर प्रेम, एकता, और सहनशीलता आदि दिव्य गुण पैदा हो सकते हैं, जो देश और समाजमें सुख तथा शान्तिके साधन बनेंगे ।

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश देनेके बहाने समष्टिकी इसी कल्याण-भावनाको जागृत करनेकी महती अनुकम्पा की है ।

कर्तव्य में रत रहते हुए, फलकी इच्छा न रखनेका महामन्त्र उसी समय सिद्ध होता है, जब प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्यको एक यज्ञ या तपके रूपमें ग्रहण करता है । अपना जो कुछ है, उसमें समष्टिका भी है । यदि मनुष्य अपने कर्तव्यको समष्टि या ईश्वरकेलिए अर्पित करे, तभी वह फलकी आकांक्षासे मुक्ति पा सकता है । क्योंकि अर्पित वस्तु में आशा और आकांक्षाके लिए स्थान ही शेष नहीं रह जाता । परम प्रेमकी अवधि स्वार्पण में ही देखी जाती है । स्वार्पण जितने परिमाणमें होता है, प्रेमभी उतना ही निखरता है । मनुष्यको अपना कुछ न समझकर, परमार्थमें अर्पण करनाही अपना कर्तव्य मानना चाहिए । यही समष्टि या ईश्वर-प्रेम का सामान्य रूप है ।

गीता हमें इसी रूपको समझने और ग्रहण करनेकी प्रेरणा प्रदान करती है । जो गीताके इस रूपको समझकर उसे ग्रहण कर सके हैं, वे सच्चे अर्थोंमें मनुष्य हैं—परमपदके भागी हैं ।

———

श्रीगीताजीके भावोंको व्यक्त करनेवाले,
गीतामें प्रयुक्त संबोधनोंकी व्याख्या

"महर्षि वेदव्यासकी यह कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सनातनधर्मके दृष्टिकोणसे भी इस छोटी-सी पुस्तिका में महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंके निचोड़ मिश्रित हैं। श्रीभगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली वाणी संसारके प्रत्येक प्राणीकेलिए, प्रत्येक क्षेत्रमें अधिक लाभदायक है।"

गीतामें संबोधन

एक गीता-भक्त

गीताका कथानक सर्व विदित है। महर्षि वेदव्यासकी यह कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सनातनधर्मके दृष्टिकोणसे भी इस छोटी-सी पुस्तिकामें महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंके निचोड़ मिश्रित हैं। श्रीभगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली वाणी, संसारके प्रत्येक प्राणीकेलिये, प्रत्येक क्षेत्रमें अधिक लाभदायक है। यहाँ संक्षिप्त रूपसे श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके सम्बोधन, और किस स्थलपर क्यों किस नामका प्रयोग किया गया है—इसी बातपर प्रकाश डाला जायगा।

गीताके प्रथम अध्यायमें जिसका नाम 'अर्जुन विषाद योग' है, मुख्यतः सेनाका वर्णन है। अनेक शूरवीरों तथा शंखोंके नाम मिलते हैं। प्रथम सम्बोधन श्लोक २९ में अर्जुनने श्रीभगवान् कृष्णको 'कृष्ण' नामसे सम्बोधित किया है। अपना विषाद प्रकट करते हुए अर्जुनने वर्णशंकर दोष आदिपर शंका प्रकट की है।

द्वितीय अध्यायमें, ३-४ श्लोकमें 'पार्थ' और 'मधुसूदन'का सम्बोधन मिलता है। ९-१० वें श्लोकमें कृष्णको 'हृषीकेश' और अर्जुनको 'गुडाकेश'के नामसे सम्बोधित किया गया है। 'गुडाकेश' निद्राको जीतनेवालेको कहते हैं। यह सम्बोधन अर्जुनको प्रोत्साहित करनेकेलिए है।

और यह उचित ही है, क्योंकि अर्जुनके मनमें कायरता उत्पन्न होगई थी। इसके पश्चात् गीतामें महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सम्बन्ध प्रारम्भ होता है, जो अत्यन्त उपयोगी है। वास्तवमें दूसरा अध्याय १० वें श्लोकसे लेकर ७२ वें श्लोक तक अत्यन्त विचारणीय है। इन श्लोकोंमें १४-१८-२८ और ३० में अर्जुनको 'भारत'के नामसे सम्बोधित किया गया है। कुछ श्लोकोंमें 'पार्थ', 'धनंजय', तथा 'अर्जुन' इत्यादिका प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त 'त्वम्', 'महाबाहु' आदि भी प्रयुक्त हुआ है। विचारणीय प्रश्न है कि 'भारत' शब्दका ही क्यों अधिक प्रयोग किया गया है? 'भारत'का अर्थ भरतवंशी होता है। यह ठीक है कि

'भरत' अर्जुनके पूर्व वंशज थे। किन्तु मैं समझता हूँ कि यहाँ इसका अर्थ प्रत्येक 'भारतवासी' है। भरतके नामपर ही भारतका नाम पड़ा है। भगवान्‌को अपना सन्देश अर्जुनके माध्यमसे प्रत्येक 'भरतवंशी' अर्थात् भारतवासीको देना था। अतः यहाँ 'भारत' शब्दका प्रयोग किया गया है। उद्देश्य है कि, 'योगः कर्मसु कौशलम्'के सिद्धान्तसे हमको देखना है कि हमारे कर्म किस प्रकार कामना रहित होकर बुद्धियोगसे प्रेरित होंगे। श्लोक ६० में सम्बोधित 'कौंतेय' शब्द विचारणीय है। इसका अर्थ यह है कि कुन्तीके पुत्र अर्जुनको ही मोह हुआ है, अन्यको नहीं। इसी श्लोकमें मन किस प्रकार इन्द्रियोंको वशमें करलेता है, इसका भी उल्लेख है। 'कौन्तेय' सम्बोधन विशेषतः अर्जुनके मनकी दशाको प्रकट करता है।

अर्जुनने श्रीभगवान् कृष्णको अधिकतर 'केशव'के नामसे ही सम्बोधित किया है। मेरी समझमें 'केशव' उनका बहुत प्रिय नाम था। अध्याय ३ में ९ और ७ वें श्लोकमें 'कौन्तेय' तथा 'अर्जुन' शब्दका प्रयोग किया गया है। यह सब व्यक्तिगत प्रयोग कहे जायेंगे। २३ और २४ में 'पार्थ'का प्रयोग है। इन श्लोकोंमें भगवान्‌ने अपने कर्तव्योंको प्रकट किया है। २५ में पुनः 'भारत' शब्दका प्रयोग हुआ है। इसमें पुनः कर्मकेलिए ही आदेश है। २८ वें श्लोकमें अर्जुनको 'महाबाहु' कहकर युद्धकेलिये तैयार होनेकेलिए कहा है। जहाँ-जहाँ भगवान्‌को अर्जुनको विशेष प्रोत्साहन प्रदान करना इष्ट था, वहाँ-वहाँ उन्होंने अर्जुनकेलिए 'महाबाहु', 'गुडाकेश' और 'धनंजय' आदि सम्बोधनोंका ही प्रयोग किया है।

ऐसा करना उचित ही है। मित्र भावसे भी अर्जुनकेलिए इस प्रकारके सम्बोधन प्रोत्साहन और बढ़ावा देनेकेलिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

एक उस क्षत्रियकेलिये मनकी शिथिलता अत्यधिक निन्दनीय है, जो धनुर्धारियोंमें सर्वश्रेष्ठ हो, अपने समाजका वरिष्ठ नेता हो। अर्जुनको यह दोनों ही गौरव प्राप्त थे। फिर तो उसके मनस्तापको 'विषाद' कहना उपयुक्त ही है। उधर धृतराष्ट्र भी तो अत्यधिक विषादयुक्त था। अतः यहाँ 'विषाद' ही विषाद है। ३१ वें श्लोकमें अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकेलिए 'कृष्णवार्ष्णेय' शब्दका प्रयोग किया है। यह सम्बोधन उनके वंशका सूचक है, और यहाँ इस प्रयोगका उद्देश्य भी यही है। इसमें 'आत्मीयता'का भी भाव अन्तर्हित है। ३९ और ४१ वें श्लोकमें क्रमानुक्रम अर्जुनकेलिए 'कौन्तेय' और 'भरतर्षभ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'भरतर्षभ' अत्यधिक उल्लेखनीय सम्बोधन है। इस सम्बोधनके द्वारा भगवान्‌ने अर्जुनको कामरूपी शत्रुको ज्ञानरूपी शस्त्रसे समाप्त करनेकेलिए आदेशित किया है।

इसी प्रकार गीताके सभी अध्यायों और श्लोकोंमें 'सम्बोधनों'का प्रयोग गंभीरभाव और 'अर्थ'की ही परिधिमें किया गया है।

सुविधानुसार शेष अध्यायोंके सम्बोधनों और उनकी सार्थकतापर भी प्रकाश डालनेकी चेष्टा की जाएगी।

जीवनके परमलक्ष्यको दृष्टिमें रखकर
परमात्मतत्वकी विचारपूर्ण व्याख्या

"हमारे जीवनका लक्ष्य क्या है? जननी श्रुति कहती हैं—आत्मलाभ अर्थात् आत्मोपलब्धि-'आत्मा लाभान्न परं विद्यते"। मुझमें ही मेरा परमविश्राम, मेरी परम प्रतिष्ठा है। आत्माका स्वरूप कैसा है? सत्, चित, एवं आनन्द, ज्ञानमय, शुद्धानन्द वा परमानन्द।"

आनन्द कहाँ, शान्ति किसमें

श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

देवाधिदेव महादेव श्रीपार्वतीजीसे कह रहे हैं—

'जय शंखधर श्रीमन् जय नन्दकनन्दन।
जय चक्रगदापाणे जय देव जनार्दन॥'

[श्रीकृष्णस्तवराजः ७]

—हे शंखधर, श्रीमन्! हे नन्दकनन्दन, चक्रगदाधारी, देव जनार्दन! आपकी जय हो।

भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यासदेवकी वाणी—

'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

इस मर्त्यभूमिमें जितने अवतार पुरुष आविर्भूत हुए हैं, उनमेंसे भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्णही साक्षात् भगवान्, पूर्णब्रह्म, नारायण हैं। वे ही सभीके आदि, समस्त पदार्थोंके कारण भी हैं। 'अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारण कारणः॥' क्या वृन्दावनके श्रीकृष्ण एवं कुरुक्षेत्रके श्रीकृष्ण एक ही सत्ता हैं? इसका उत्तर श्रीगीतामें है, जो भगवान् श्रीकृष्णके अपने श्रीमुख-निस्सृत सूक्ति है—

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥ १०।२।

—भगवान् श्रीकृष्णकी उत्पत्ति अर्थात् विभूति सहित लीलासे प्रकट होनेको न देवता लोग, और न भृगु आदि महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि वे सब प्रकारसे देवताओं और महर्षियोंके भी आदि कारण हैं। जन्म ग्रहण उनका लीलाविलास है, आकार उनकी विभूति है। वे पूर्ण, पूर्णतर, तथा पूर्णतम हैं। द्वारका और कुरुक्षेत्रमें वे पूर्ण हैं, मथुरामें पूर्णतर,

नित्य वृन्दावनमें पूर्णतम हैं। इस संसारमें जो अपूर्ण हैं, क्या उनकेलिये पूर्णत्व प्राप्त होना सम्भव है? मैं स्थूल हूँ, मैं देहविशिष्ट हूँ, क्या मेरे लिए सूक्ष्मत्व प्राप्ति सम्भव होगी? क्या साकारकेलिये निराकार-राज्यमें पहुँचना सम्भव है?

जो पूर्ण एवं पूर्णतम हैं, वे तो अपरिज्ञेय हैं, अचिन्तनीय हैं, फिर वे वाक्य और मनके परे हैं,—'अवाङ्मनसोगोचर'। भाषा उन्हें प्रकाशित करनेमें असमर्थ होजाती है, चिन्ताकी सहायतासे वे अज्ञातही रह जाते हैं। उनकी प्रत्यक्ष उपलब्धिका साधन क्या है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥ गीता,१०।८।

—वे वासुदेवही चराचर निखिल जगतकी उत्पत्तिके कारण हैं, उनसेही सभी—स्थिति, नाश और कर्मफलरूप विक्रिया—प्रवर्तित होते हैं, इसप्रकार तत्वसे समझकर बुद्धिमान भक्तजन प्रेमभावसे विभोर होकर उन परमेश्वरको ही निरन्तर भजते हैं।

भगवान्के सामीप्य, सायुज्य तथा सारूप्य लाभ हेतु भक्ति ही प्रधान उपचार है। नारदीय भक्ति—सूत्रका उदात्त निर्देश है—

'ॐ तदेव साध्यताम, तदेव साध्यताम।'

भक्तिकी साधना करो, भक्तिकी ही साधना करो।

'ॐ यं लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।'

भक्तिलाभमें कृतकृत्य पुरुष सिद्ध रहते हैं, अमृत होजाते हैं, तृप्त होजाते हैं। भक्ति का उत्स मन है। यदि हमारा मन पूर्णकी चिन्ता करनेका संकल्प करता है, तो उस मनके लिये एक विशेपण प्रयोग करना पड़ता है—संकल्पात्मक (मन) और उसी क्षण परिपूर्ण परमात्माके ऊपर भी विशेषण आरोप करना पड़ेगा—ससीमका असीम।

किन्तु एककेलिए ये दो विशेषण परस्पर विरुद्ध हैं। ससीम और असीमको विरुद्ध भावापन्न करता है, हमारे भीतर सूक्ष्मरूपसे अवस्थित जो ज्ञान व चैतन्य है, वह। हम असीमको ससीम देख सकते हैं, फिर ससीम भी असीमत्व प्राप्त कर सकता है—यह बोध व्यवहार क्षेत्रमें नित्य प्रत्यक्ष है। इस बोधको जीव-चैतन्य कहा जा सकता है। इसी चैतन्यके बलसे संकल्प और संकल्पके पश्चात् अनुभूतिकी उत्पत्ति होती है। अनुभूति और चैतन्य उस समय एक होजाते हैं। जीव चैतन्य एवं परमात्मा चैतन्य अभिन्न हैं।

मनका सूक्ष्म अंश अनुभूति है। पूर्ण अज्ञेय है सही, किन्तु ऐसा एक पदार्थ है, जो वस्तुतः वास्तव, सत्य व सत् है। 'यह' इदं शब्दका वाचक है—वे। मैं भी नहीं (युष्मद् और अस्मद् शब्दका अविषयक है)। अर्थात् मैं और आप-इन दोनोंके परे वे सत् पदार्थ हैं, सत्य हैं। जिस क्षण वे स्थूल इन्द्रियोंके द्वारा अविछिन्न होजाते, उसी क्षण वे साकार, सावयव होकर रहते हैं।

उपनिषद्ने परम पदार्थको 'सत्' जैसा प्रतिपन्न किया है। सत्य पदार्थ चैतन्यमय, ज्योतिर्मय, ज्ञानमय इनके अतिरिक्त आनन्दमय व मंगलमय भी है। निखिल जगत्के मंगल हेतु उनका अस्तित्व है। करोड़ों ब्रह्माण्डको धारण करना उनका धर्म है। धर्म तो वे हैं ही, क्योंकि करोड़ों ब्रह्माण्डके मङ्गल हेतु उनकी इच्छा प्रकाश-प्राप्त होती है। इस कारणसे वे इच्छा शक्ति सम्पन्न हैं। उनकी इच्छाके बलसे एकके भीतर बहुका प्रकाश।

'तदैक्षत वहुस्याम प्रजायेय ।'

'वे', एकमात्र परमपुरुषने इच्छाकी—वहुस्याम—बहुत हूँगा, प्रजायेय—जन्मग्रहण करूँगा। 'सोऽकामयत स लोकानसृजत' । वे परमात्मा अकामयत हैं। उन्होंने कामनाकी और उन्होंने लोकसमूहकी सृष्टिकी । उपनिषद्की यह वाणी परमात्माकी इच्छा शक्तिको व्यक्त करती है । इससे सूक्ष्मकी स्थूलत्व प्राप्ति और असीमकी माझसीमा प्रकाशित होती है । इसीलिये रवीन्द्रनाथने गाया है, 'सीमारमाझे असीमतुमि वाजाओ अपन सुर'—तुम असीम हो सही, किन्तु सीमायित होकर अपनी वाणी सुनाया करते हो ।

जो वाक्य तथा मनकी पहुँचके बाहर थे, वे अब स्थूल राज्यमें शतधा व्याप्त होगए हैं, सहस्रधा विस्तृत होगये हैं । कितने जीव-जन्तु, कितने प्राणियोंकी सृष्टि हुई । सीमाके भीतर परमात्माका अस्तित्व है ।

वे परमात्मा, परमपुरुष अर्जुनसे कहते हैं—

'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।'

—हे धनंजय ! इस जगत्में मेरेसे बाहर कोई नहीं है, कुछ भी नहीं है । भीतरमें मैं हूँ और मेरे भीतर सभी कुछ हैं । इसीलिये चिरदीप्त, भक्तभास्कर तुलसीने सभी ओर, सभी कुछ में आनन्दमय भगवान्को देखा था एवं सभी भक्त साधकभी देखते हैं—

सन्तों के जीवन ध्रुव तारे, भक्तों के प्राणों से प्यारे ।
विश्वम्भर जग रखवारे, सब विधि पूरण काम ।। राम राम ।।
अजामील दुख टारण हारे, गज गणिका के तारण हारे ।
द्रुपद-सुता-भय बारन हारे, सुखमय मंगल धाम ।। राम राम ।।
अनल-अनिल-जल रवि, शशि, तारे, पृथ्वी गगन गन्ध रस सारे ।
तुझ सरिता के सब फव्वारे, तु सब का विश्राम ।। राम राम ।।
तुझ पर धन-जन-तन-मन वारे, तुझ प्रेमामृत-मद-मत वारे ।
धन्य धन्य ! वे जग उजियारे, जिनके मुख पर नाम ।। राम राम ।।

'दृश्यमान नहीं होते हैं'—ऐसी उक्तिको अज्ञेयवाद कहा जा सकता है । धर्मके स्वरूप की व्याख्यासे प्रतिपन्न हुआ है कि वे हैं । भौतिक विज्ञानके अनुशीलनसे प्रभासित हुआ है कि सर्वव्यापी चैतन्य-शक्ति विद्यमान है । शास्त्रमें वे ही सत्, चित्, एवं आनन्द-स्वरूप हैं । कार्य-कारण तत्त्वका तात्पर्य समझमें आनेसे धर्म और भौतिक विज्ञानका वह ऐक्य अनुभव-गोचर होकर रहेगा कि, सृष्ट पदार्थसमूह कार्य है और सृष्टिकर्त्ता कारण है । अर्थात् 'हरिरेव जगत जगदेव हरि', हरि तो जगदाभिन्न तनु हैं । हरि ही जगत् हैं, फिर जगत् भी हरि है—हरि और जगत् अभिन्न हैं । अर्थात् हरिके भीतर जगत् अवस्थित है और जगत्के भीतर हरि विद्यमान हैं, क्योंकि निमित्त कारणरूपी हरि जगत्के साथ मिश्रित होकर हैं । यह मानो पुरुष और प्रकृतिमें आलिंगन, श्रीकृष्ण और श्रीराधाका युगल-मिलन है ।

परिदृश्यमान जगत् कार्य है। जो दृश्य भी नहीं और अदृश्य भी नहीं, वे परमतत्व समस्त जगत्के कारण हैं। पूर्व ही कहा गया है कि, परमतत्व, 'सर्वकारण-कारण' स्थूल पदार्थ हैं—क्षिति, अप्, तेज, वायु और आकाश। इनकी मात्रा-गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, तथा शब्द हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं—नासिका, रसना, चक्षु, चर्म, एवं श्रवण। ये पन्द्रह तत्व परस्पर अङ्गाङ्गिभूत हैं। नासिका पृथ्वीकी गन्ध ग्रहण करती है, रसना जलके रसके स्वादका आस्वादन करती है, चक्षु तेजके रूपको देखते हैं, चर्म वायुके स्पर्शको अनुभव करता है, और श्रवणसे आकाशका शब्द श्रुत होता है। इन पन्द्रहके अतिरिक्त पाँच कर्मेन्द्रिय हैं—वाक्, पाणि, पाद, गुदा और उपस्थ। कर्मयोगकी सिद्धि हेतु कर्मेन्द्रिय साधन हैं। मन दश इन्द्रियोंका अधिपति है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय ज्ञानयोग साधनके सहायक हैं। आत्माका अवलम्बन इसवादकी प्रकृति है। इसीलिये इसका नाम अध्यात्मवाद है। सूक्ष्म आत्माके साथ सूक्ष्म मनका संयोग, तत्पश्चात् मनके स्थूल अंशके साथ स्थूल इन्द्रियोंका संयोग, फिर इन्द्रियोंके साथ विषयका योग होता है। विषय दर्शनके निमित्त हमारे स्थूल चक्षु ही एकमात्र कारण नहीं हैं, इसका कारण स्थिर मन है। मनके ऊपर अन्य कारण आत्मा है। इस कारण आत्मा है। इस कारणसे सभी कारणोंका कारण आत्मा है। जीवके भीतर आत्मा अवस्थित है—जीवात्मा, विश्व जगत्में अवस्थित आत्मा है, परमात्मा है।

हमारे जीवनका लक्ष्य क्या है ? जननी श्रुति कहती हैं—आत्मलाभ अर्थात् आत्मोपलब्धि—'आत्मालाभान्न परंविक्ष्यते।' मुझमें ही मेरा परम विश्राम, मेरी परम प्रतिष्ठा है। आत्माका स्वरूप कैसा है ? सत्, चित् एवं आनन्दमय, ज्ञानमय, शुद्धानन्द, वा परमानन्द। जन्म मृत्यु प्रवाहको अतिक्रम जन्य आत्मलाभका प्रयोजन है। विक्षिप्त मनको केन्द्रीभूत कर पानेसे—चंचल मनको अंचचल कर पानेसे आनन्दलाभ व आत्मज्ञान सम्भव होगा, यही आत्मदर्शन कहलाता है। 'दृश्' धातुका अर्थ ज्ञान है, उस ज्ञानके राज्यमें अज्ञानका अस्तित्व नहीं है, आलोकके राज्यमें अन्धकार नहीं है, आनन्दके देशमें निरानन्द नहीं है, केवल शान्ति, निरविच्छिन्न शान्ति है।

*

पुष्प-रेण

सदाचार ही वास्तविक महत्ता है। जीवनसे भी अधिक मूल्यवान है। अपने चरित्र का ध्यान रखना चाहिये, इससे अच्छा सहायक दूसरा कुछ भी नहीं है। महात्मा सदाचारमें कभी नहीं चूकते हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि सदाचारकी विफलताका कितना बड़ा दुष्परिणाम होता है। सदाचार अच्छाईका बीज है, कुत्सित जीवन अनन्त बुराइयोंका सृजन करता है। जो यह जानते हैं कि किस प्रकार सदाचारपूर्ण जीवन बिताया जाय, वे, भले ही उनकी शिक्षा उच्चकोटि की है, अज्ञानी हैं।

यह सोचना कि अमुक वस्तु सदा बनी रहेगी, सबसे बड़ा अज्ञान है। पक्षी अपना घोंसला छोड़कर उड़ जाता है, इसी प्रकार देह और आत्माका सम्बन्ध विनश्वर है, आत्मा देहको छोड़कर चला जाता है। मृत्यु नींद है और जन्म नींदके पश्चात् जागनेका नाम है।

मनकी दीनता ही परम दीनता है। ज्ञानी धनकी कमीको दीनता नहीं मानते हैं। मूर्खता—अरे यह क्या है ! यह अहंकार—अभिमान "हम लोग ही ज्ञानी हैं" परम मूर्खता है।

—संत तिरुवल्लुवर

"चित्रका सौंदर्य रङ्गोंकी विभिन्नतामें, संगीतका माधुर्य स्वरोंकी विविधतामें है। एक रंग और एक स्वरसे न कोई चित्र बनता है, न संगीत। इसी प्रकार भगवान्‌ने अपने एक रूपका अनेक रूपोंमें सौन्दर्य और आनन्द अभिव्यक्त करनेकेलिए विश्वको सृष्ट किया है।"

अवतारका उद्देश्य

श्रीकेशवदेव आचार्य

[श्रीकेशवदेव आचार्य सुप्रसिद्ध संत, अनुभवी विद्वान् और विवेचक हैं। उन्होंने भगवान्‌के अवतारपर तीन महत्त्वपूर्ण लेख भेजनेकी कृपा की थी। इसके पूर्व उनके दो लेख, पाँचवें और छठे अङ्कमें क्रमानुक्रम प्रकाशित हो चुके हैं। यह तीसरा लेख आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसे आप उन्हीं लेखोंके क्रममें पढ़ें, तो भगवान्‌का अवतार और अवतारके उद्देश्य का वास्तविक चित्र आपके बुद्धि-पटल पर अङ्कित हो जायगा]।

गीताके कुछ वचनों (४।८) का उल्लेख करते हुए अवतारके सम्बन्धमें बहुधा यह आपत्ति उठाई जाती है कि, दुष्टोंका विनाश तो भगवान् उनके भीतर रोग उत्पन्न करके भी कर सकते हैं, साधु पुरुषोंकी रक्षा बलशाली श्रेष्ठ मनुष्योंके द्वारा कराई जा सकती है और धर्मकी स्थापना उच्चकोटिके महर्षियोंके द्वारा संभव हो सकती है। अतः इन कार्योंकेलिए भगवान्‌को स्वयं मानव-देह धारण करनेकी आवश्यकता नहीं है।

इसका समाधान यह है कि जो भगवान् अपने संकल्पमात्रसे असंख्य लोकोंका उत्पादन और विनाश कर सकते हैं, वे निःसन्देह रोग आदिके द्वारा दुष्टोंका विनाश भी कर सकते हैं। परन्तु इस प्रकार दुष्टोंका विनाश करनेपर जनसाधारणको कोई विशेष शिक्षा नहीं मिलती। जनसाधारणको अधिक लाभ तब प्राप्त होता है, जब वे दुष्टको अपने दुष्ट कर्मका फल भोगते हुए देखते हैं—जैसा, रावण, कंस, दुर्योधन आदिके सम्बन्धमें देखा जाता है। जब किसी प्रचलित धर्म या रीति रिवाजकी स्थापना करना भगवान्‌का उद्देश्य होता है, तो निःसन्देह यह कार्य उच्चकोटिके ऋषियोंके द्वारा कराया जा सकता है और कराया भी जाता है। परन्तु अवतार ग्रहण करनेका यह मुख्य उद्देश्य नहीं होता। मुख्य उद्देश्य होता है, मानवतामें उसकी तत्कालीन चेतनाकी अवस्थासे किसी उच्चतरनवीन भूमिकाको विकसित करना। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि, लकड़ीमें या मिट्टीके तेलमें जब अग्नि विद्यमान है, तो वह स्वयं ही उसके भीतरसे प्रकट हो जायगी। परन्तु देखा यह जाता है, जब

लकड़ी पर या तेल पर ऊपरसे अग्निकी क्रिया होती है, तभी वह प्रकट होती है, इसके बिना प्रायः नहीं। इसी प्रकार हम देखते हैं कि जड़ तत्वमें प्राण तिरोभूत होनेपर भी उसकी अभिव्यक्तिके लिए प्राणमयलोकसे प्राणके अवतरणकी और मनोमयलोकसे मनके अवतरण करने की आवश्यकता पड़ती है और इनकी क्रियाके प्रभावसे वनस्पति, पशु और मनुष्य विकसित होते हैं। मनकी भी अनेक अवान्तर भूमिकायें हैं—जैसे तामसिक, तामसिक-राजसिक, राजसिक-सात्त्विक, शुद्ध सात्त्विक आदि। मानवतामें इन भूमिकाओंके क्रमशः विकास करनेके लिए, जिस भूमिकाको विकसित करना होता है, तदनुरूप शक्तिको लेकर भगवान् स्वयं मानव-देह धारण करते हैं और अपने जीवन-व्यवहार और आदर्श-द्वारा मानव जातिको अपनी चेतनाके भीतरसे उसे विकसित होनेमें सहायता देते हैं। यही अवतारका मुख्य उद्देश्य होता है और यह कार्य उस समय तक की विकसित भूमिकाके व्यक्तियों द्वारा नहीं हो सकता, अतः भगवान्को स्वयं देह धारण करके यहाँ आना होता है।

इसके अतिरिक्त, चित्रका सौन्दर्य रंगोंकी विभिन्नतामें, संगीतका माधुर्य स्वरोंकी विविधतामें है। एक रंग और एक स्वरसे न कोई चित्र बनता है, न संगीत। इसी प्रकार भगवान्ने अपने एक रूपका अनेक रूपोंमें सौन्दर्य और आनन्द अभिव्यक्त करनेकेलिये विश्व को सृष्ट किया है। उसने पृथ्वीपर जड़तत्व, वनस्पति, पशु और मनुष्योंको सृष्ट किया है। दूसरे लोकोंमें देवताओंकी सृष्टि की है। देवता कभी-कभी मानव-देह धारण करके पृथ्वीपर आते हैं और मनुष्योंके उन्नयनमें सहायता करते हैं। उच्चकोटिके मनुष्यभी कभी-कभी उन लोकोंमें जाते हैं और वहाँ रहकर अपने विकासकेलिए आवश्यक शक्ति प्राप्त करते हैं। इन पाँच प्रकारकी सृष्टिके अतिरिक्त एक छठी सृष्टि यह भी है कि, स्वयं भगवान् मानव देह धारण करके यहाँ आते हैं और अपने आदर्श, उपदेश, जीवन व्यवहार, आदिके द्वारा मनुष्योंके विकासमें सहायता पहुँचाते हैं। किन्हीं प्रचलित विषयों या रीतिरिवाजोंको पुष्ट करना भगवान्के मानव-देह धारण करनेका मुख्य उद्देश्य नहीं होता—यद्यपि कभी-कभी अवतार ऐसा कर सकता है, परन्तु कभी-कभी वह उनका विनाश करके दूसरे नवीन नियमों और रीतिरिवाजोंको भी प्रचलित कर सकता है। अतः मुख्य उद्देश्य होता है, मानव चेतनाके विकासमें अग्रिम भूमिकाकेलिये आवश्यक शक्तिको यहाँ लाना और उस शक्तिको और अग्रिम भूमिकाको यहाँ स्थापित कर जाना। यही धर्म संस्थापनार्थायका सच्चा युक्तिसंगत अर्थ है।

धर्म और अधर्म

सत्कर्मको धर्म कहा जाता है और कुकर्मोंको अधर्म। धर्म मनुष्यको परमात्माकी ओर आमुख करता और अधर्म उसे सांसारिकतामें उन्मत्त कर देता है। अधर्मका अस्तित्व केवल मात्र धर्मको महिमावान् बनानेके लिए है। अधर्माचार व्यक्तिको सत्संगके प्रमादसे सन्त बनाया जा सकता है।

जो धर्म है, वह पुण्य है और वही सत्कर्म है। जो अधर्म है, वह पाप है और वही दुष्कर्म है।

धर्म और अधर्म व्यावहारिक अभिवचन हैं। एक कालका धर्म दूसरे कालमें अधर्मभी बन जाता है। एक स्थान का धर्म दूसरे स्थानमें अधर्मके रूपमें भी समझा जा सकता है। एक व्यक्तिके लिए जो धर्म है, वही दूसरे व्यक्तिकेलिए अधर्म हो सकता है।

श्रीकृष्ण लीला-अङ्कन सम्बन्धी भारतीय
शिल्पकलाका ऐतिहासिक अनुसंधान-चित्र

"विष्णुके अवतारके रूपमें श्रीकृष्णने भारतीय जनं-जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया । भगवान्का यह महत्वपूर्ण अवतार एवं लोकोत्तर लीलायें समान रूपसे साहित्य, संगीत, व कला का प्रिय विषय बनीं। भारतीय शिल्पकारने भी सहृदयता एवं जागरूकताके साथ भगवान् श्रीकृष्णके जीवन सम्बन्धी दृश्यों एवं लीलाओंको पाषाण और मृण्मूर्तियोंके माध्यम से सजीव बनाने का सफल प्रयास किया ।"

भारतीय शिल्पकलामें श्रीकृष्ण-लीलाका अंकन

श्रीविजयशंकर श्रीवास्तव एम. ए

भारतीय कला प्राचीन कालसे धर्मकी छत्र-छायामें फली, फूली और विकसित हुई। हमारी कला सदासे धर्मकी सहचरी रही है । ईस्वी सन्के पूर्वकी प्रथम द्वितीय शताब्दियोंमें भागवत धर्मके विकासके साथही भारतमें मन्दिर-स्थापत्यका शुभारम्भ हुआ । दुर्भाग्यसे इस युगके मन्दिर-आक्रान्ताओं एवं कालकी विडम्बनाके कारण अब शेष नहीं रहे—फिर भी बिखरी हुई पुरातत्व सामग्रीके शास्त्रीय अध्ययन से स्पष्ट है कि इस कालमें भगवान् संकर्षण वासुदेवकी पूजा बहु प्रचलित थी। और उनके निमित्त मन्दिरोंका भी निर्माण हुआ । प्राप्त शिलालेखों एवं पुरावशेषोंके आधारपर हम कह सकते हैं कि इस युगमें प्राचीन विदिशा, मध्यमिका एवं मथुरा भागवत धर्मके प्रमुख केन्द्र थे । आधुनिक मध्यप्रदेशके बेसनगर नामक स्थानमें, ईस्वी सन्की पूर्वकी शताब्दियोंमें एक सुविशाल मन्दिर रहा होगा, जिसे 'प्रासादोत्तम' की संज्ञा दी गयी है । चित्तौड़के विश्व विश्रुत दुर्ग से ७, ८ मील दूर-स्थित वर्तमान नगरी ग्राम ही प्राचीन मध्यमिका है, जहाँ कृष्ण और बलरामकी पूजा-हेतु शिला-प्राकारका निर्माण हुआ था । मथुरामें महाक्षत्रप शोडासके राजत्वकालमें, महास्थान में वसु नामक व्यक्ति द्वारा भगवान् वासुदेव कृष्णके एक चतुःशाला मन्दिरके तोरण तथा वेदिका बनवानेका उल्लेख मिलता है । साहित्यिक साक्ष्योंसे भी इस बातकी पुष्टि हो जाती है । मेगस्थनीजके अनुसार मथुराके शौरसेन लोग हैराक्लीज (Herakles) को विशेष आदर देते थे । विद्वानों ने हैराक्लीजको कृष्णका यूनानी रूपान्तर माना है । कौटिल्य ने भी अपने 'अर्थशास्त्र' में संकर्षण वासुदेवकी पूजाका उल्लेख किया है ।

विष्णुके अवतारके रूपमें कृष्ण ने भारतीय जन-जीवनको सबसे अधिक प्रभावित किया । भगवान्का यह महत्वपूर्ण अवतार एवं उनकी लोकोत्तर लीलायें समान रूपसे साहित्य, संगीत व कलाका प्रिय विषय बनीं । भारतीय शिल्पकार ने भी सहृदयता एवं जागरूकताके

साथ भगवान् कृष्णके जीवन सम्बन्धी दृश्यों एवं लीलाओंको पाषाण और मृण्मूर्तियोंके माध्यमसे सजीव बनानेका सफल प्रयास किया। मथुराके गायत्री टीलेसे प्राप्त तथा स्थानीय संग्रहालय में प्रदर्शित १३४४ नम्बरका खंडित पाषाण फलक, भारतीय मूर्तिकलामें अभीतक मिले कृष्णसम्बन्धी दृश्योंमें प्राचीनतम है। ईसाकी प्रथम-द्वितीय शताब्दीके इस फलकमें मथुरासे गोकुल जानेके लिए यमुना पार करते हुए वसुदेवजीका अङ्कन है। वे नवजात शिशु को सिरपर रखे हुए सूपमें ले जा रहे हैं। यमुनाकी लहरों के वेगको कुशल कलाकारने धारीदार टेढ़ी रेखाओं द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की है। पासमें भगवान्‌की रक्षार्थ नागराज प्रदर्शित किये हैं। यमुनामें कच्छप, मत्स्य एवं मकरका अङ्कन दृष्टव्य है।

भगवान् कृष्णकी लीलाओंका शिल्पकलामें आविर्भाव सर्वप्रथम गुप्त कालमें हुआ जान पड़ता है। गुप्तनरेश परम भागवत थे और उनकी वैष्णव धर्ममें विशेष आस्था थी। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने मथुरा में श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर एक सुविशाल मन्दिर भी बनवाया था। कुछ भी हो, इतना तो सुनिश्चित है कि गुप्त नरेशोंके प्रश्रय में वैष्णव विचारधाराको पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। पुराणोंकी संरचनाभी इस युग में प्रारम्भ हो गई थी, जिनमें भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका विशद् वर्णन है। ऐसी स्थितिमें तत्कालीन शिल्पकारों द्वारा, मूक पाषाण खंडोंको अपनी छैनी से कृष्ण-लीला-दृश्योंके अङ्कन द्वारा, सजीवता प्रदान करनेकी भावना स्वाभाविक ही थी। वास्तव में यह आश्चर्यकी बात है कि श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धित अद्यावधि प्राचीनतम कलाकृतियाँ मथुरा क्षेत्रसे न प्राप्त होकर, राजस्थानकी मरुभूमिसे प्राप्त हुई हैं। घग्घरके तटपर अवस्थित रंगमहल थेड़ी से प्राप्त एवं बीकानेर संग्रहालयमें सुरक्षित दो विशालकाय मृण्मूर्तियां इस दृष्टिसे विशेष रूपेण उल्लेखनीयहैं। इनमें गोवर्द्धनधारण एवं दानलीलाका सुन्दर अङ्कन किया गया है। एक फुट से भी अधिक ऊँची ये मृण्मूर्तियां आरम्भिक गुप्तकालकी रचनायें हैं। घग्घरके दोनों ओर मीलों तक फैली हुई थेड़ियोंसे एकत्रकी गयी पचास से भी अधिक, इसी आकारकी मृण्मूर्तियाँ बीकानेर संग्रहालयकी अमूल्य निधि हैं। इनमें श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी दो फलक मात्रही प्राप्त हुए हैं, जिनका उल्लेख पहलेही किया जा चुका है। इनके आकार एवं सम्पृक्त विषयवस्तुसे ऐसा भास होता है कि आज से लगभग १६००,१७०० वर्ष पूर्व मरुस्थलीके इस भू-भागमें कोई हिन्दू मन्दिर रहा होगा, जिसकी दीवारों पर इन मृण्मूर्तियोंका उपयोग किया गया रहा होगा। इसी क्षेत्रके मुण्डा टीले से एक महत्वपूर्ण मिट्टीकी मूर्ति मिली थी, जिसमें गुप्तकालीन लिपिमें 'यशोदाकृति' लेख है। दुर्भाग्य से इस भव्य मूर्तिकी लेखयुक्त पीठिकाही प्राप्त हो सकी है—मूर्तिका ऊपरी भाग नहीं मिल सका। कुछ भी हो, यशोदाका अङ्कनभी कलाकार करनेसे नहीं चूका। बीकानेरकी भाँति जोधपुरका क्षेत्रभी इस दृष्टिसे कम महत्व का नहीं। मंडोर से प्राप्त एवं जोधपुर संग्रहालयमें प्रदर्शित, किसी गुप्तकालीन मन्दिरके बारह तेरह फुट ऊँचे दो तोरण स्तम्भ सुरक्षित हैं, जिनमें भगवान् कृष्ण एवं बलरामकी अनेक लीलायें अङ्कित हैं। इनमें मुख्य गोवर्द्धनधर, मक्खन चुराते बाल-कृष्ण, शकट भंजन, बलराम द्वारा धेनकासुर वध, कालियदमन, अरिष्टासुर वध एवं केशीवध मुख्य हैं। यशोदाके निकट सोए हुए शिशु कृष्ण द्वारा शकट-भंजनका दृश्य बड़ी कुशलताके साथ इस तोरणके सबसे निचले भागमें अङ्कित किया गयाहै। इस कथानकका समकालीन अङ्कन बादामी गुफा सं० २ तथा देवगढ़ झाँसीके मन्दिरमें भी प्राप्त होता है। खजुराहोके उत्तर मध्यकालीन

लक्ष्मणमन्दिरकी भित्ति पर भी भगवान्की इस लीलाको बड़ी सजीवताके साथ अङ्कित किया गया। कंस द्वारा कृष्णकी हत्याके लिए भेजे गये अश्वरूपी केसी के वधका सर्वप्रथम अङ्कन मंडोर तोरणमें ही हमें प्राप्त होता है, यद्यपि कालान्तरमें भगवान्की यह लीला आबानेरी (राजस्थान) तथा पहाड़पुर (बंगाल) के उत्तर गुप्तकालीन मन्दिरोंका भी प्रिय विषय बनी। जयपुरके आमेर संग्रहालयमें प्रदर्शित, आबानेरी मन्दिरका दृश्य प्रस्तुत करनेवाला यह खंडित पाषाण फलक, मूर्तिकलाकी दृष्टिसे विशेषरूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें भगवान् और केसीके युद्धके साथही साथ, इस घटनाके परिणामको भी अङ्कित करनेसे कलाकार नहीं भूला। सुगठित कृष्णकी फैली हुई दोनों टांगोंके बीच मृत अश्वके रूपमें पड़े हुए केसीके अङ्कनमें इस अज्ञातनामा शिल्पीने अपनी पैनी दृष्टिका परिचय दिया है।

गोवर्द्धनधारण एवं कालियदमन लीलायें गुप्तकालीन कलाकारके प्रिय विषय थे। इन लीलाओं-द्वारा श्रीकृष्णने जन-जीवनकी रक्षाका जो बीड़ा उठाया था, उसे भारतीय शिल्पी कैसे विस्मृत कर सकता था? यही कारण है कि इन लोकप्रिय लीलाओंके कई सुन्दर गुप्तकालीन उदाहरण मिले हैं। हम बीकानेर एवं जोधपुर संग्रहालयकी गोवर्द्धनधारी मूर्तियोंकी चर्चा कर चुके हैं। बीकानेर फलकमें भगवान्के सिरपर मुकुट और गलेमें वनमाला दिखाकर कलाकारने श्रीकृष्णके विष्णुत्वको प्रदर्शित करना चाहा है। यही बात मथुरा म्यूजियमकी गोवर्द्धनधर मूर्तिमें भी है। दोनों मूर्तियोंमें गायोंके अङ्कनद्वारा व्रजका वातावरण उत्पन्न किया गया है। मंडोर तोरणका कलाकार तो इतने से ही संतुष्ट न हुआ, उसने गोवर्द्धन पर्वतपर हिंसक पशुओं एवं अश्वमुखी अक्षणी तकको दिखा डाला। बादामी गुफाका अङ्कन भी कम सजीव नहीं है, इन्द्रके प्रकोपसे त्रस्त ग्वाल-बाल तथा गायें सभी कृष्णकी शरणमें आकर इकट्ठे होगये और तब भगवान्ने गोवर्द्धन पर्वत समूल उखाड़ लिया और अपनी भुजाओंपर उसे धारणकर व्रजकी रक्षाकी। श्रीकृष्णको इस महत् कार्यकेलिए विशालरूप धारण करना पड़ा हो, ऐसीभी कलाकारने कल्पनाकी है। काशी से प्राप्त ७ फुट ४ इंच ऊँची तथा ४ फुट १० इंच चौड़ी गोवर्द्धनधारीकी मूर्तिमें मानो कलाकारने भगवान्के इस वृहत्वपु एवं स्वयं शैल रूपका ही अङ्कन किया हो। भगवान्की यह लीला इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि दक्षिण भारतकी उन्दवल्लि गुफा, बादामी गुफा, पल्लवयुगीन महाबलीपुरम् स्थित कृष्णमण्डप गुफा, मुग्गेहलिम, हलैबीडु आदिके प्राचीन मन्दिरोंमें भी उसे स्थान मिला। इतनाही नहीं, दक्षिणी पूर्वी एशिया में स्थित चम्पा नामक हिन्दू उपनिवेशका कलाकारभी इस दृश्यको अङ्कित करनेका मोह त्याग न सका। कालियदमन लीलाकी भी यही दशा है। इस लीलाके आधे दर्जन से भी अधिक केवल गुप्तकालीन उदाहरण मिले हैं। मथुरासे ही इस संदर्भके तत्कालीन दो तड़ित फलक प्राप्त हुए हैं, जो मथुरा तथा बड़ौदा संग्रहालयोंमें सुरक्षित हैं। मंडोर तोरणकी भाँति इनमें कृष्णने नागराजको पाशसे बाँध रक्खा है; परिणामस्वरूप नागराज्ञी अवनतमुखी होकर भगवान्से अपने पतिके प्राणोंकी भीख मांग रही है। नाग-पतिका शरीर सर्प का तथा मुख मानवीय है। लखनऊ म्यूजियम में भी इस दृश्यका एक सुन्दर फलक है। कालियदमनके गुप्तकालीन अन्य उदाहरण बादामी गुफा सं० २-३, एवं भुवनेश्वर से प्राप्त हुये हैं। गुप्तकालके पश्चात् तो इस लीलाको भारतीय शिल्पमें अत्यधिक प्रश्रय मिला। सिरपुरके लक्ष्मण मन्दिरके द्वार परभी श्रीकृष्ण एवं बलरामकी अनेक लीलायें गुप्तकालकी कलामें अङ्कित हैं, जिनमें मुख्य यमलार्जुन-उद्धार, चाणूर और शलनामक कंसके

मल्लोंका वध एवं बलराम-द्वारा सूतलोमहर्षणकावध है। अन्तिम दृश्यका चित्रण धौलपुर से प्राप्त एवं भारतकला भवन, वाराणसीमें प्रदर्शित ८ वीं शतीके पाषाण फलक, तथा १० वीं शताब्दीके लक्ष्मणमन्दिर खजुराहोमें भी हुआ है।

गुप्तकालके पश्चात् सातवीं शताब्दीसे मध्यकालतक श्रीकृष्णलीला-दृश्योंका अङ्कन मन्दिर-स्थापत्यका अभिन्न अङ्ग ही बन गयी। पूर्वी भारतमें बंगालके पहाड़पुरके पालयुगीन मन्दिरोंमें भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंको अङ्कित करनेवाली लगभग एक दर्जन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिसे उन्होंने शैशव, कैशोर एवं युवावस्थाओंमें समय-समय पर सम्पन्न किया था। इनमें मुख्य वसुदेवजी देवकीसे नवजात कृष्णको गोकुल लेजानेके लिए लेते हुए, यशोदा मक्खन निकालते हुए, बालकृष्ण मक्खन चुराते हुए, यमलार्जुन उद्धार, प्रलम्ब तथा केसी नामक दैत्योंका बध, चाणूर और मुष्टिक नामक मल्लोंका क्रमशः कृष्ण एवं बलराम द्वारा वध, गोवर्द्धनधारण, कंस वध आदि हैं। राधाकृष्णकी युगल मूर्ति एवं रासलीलाका प्राचीनतम अङ्कन संभवतः पहाड़पुरके इन ८-९वीं शताब्दीके पाषाण फलकोंसे ही प्राप्त हुआ है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकी रचनाका कालभी यही है। तत्कालीन मण्डोर शिलालेखमें राधाकृष्णका स्पष्ट उल्लेख निम्न शब्दोंमें हुआ है—

गोपी गिरी गोकुले श्रुत्वा राधिका स्वभूषण विधि शौरेः कृतः पाणिनागऐ""""रूपं हरेः पातु वः।

इस कालके अनेक सुन्दर मन्दिर, जिनकी भित्तिपर श्रीकृष्ण लीलाको स्थान मिला है, प्रकाशमें आ चुकेहैं। उनमें राजस्थानके ओसियां, किराडू, केकीन्द, कामां, जगेश्वर, अर्यूण, चित्तौड़ आदि मन्दिर, मध्यप्रदेश स्थित खजुराहोके लक्ष्मण एवं पार्श्वनाथ मन्दिर, गुजरातका शामलाजी मन्दिर, दक्षिण भारतके महाबलीपुरम् तथा हलेबीडुके मन्दिर प्रमुख हैं। इनमें भगवान्‌की प्रायः सभी मुख्य लीलाओंका अंकन हो गया है। लक्ष्मण मन्दिर खजुराहो तथा ओसियाँ, किराडू एवं बादामी गुफामें पूतना वधका सुन्दर अंकन प्राप्त होता है। सोबागपुर से भी शकट भंजन तथा कुब्जानुग्रहके मध्यकालीन फलक प्राप्त हुए हैं।

जैन मंदिरोंमें भी श्रीकृष्णलीला-अङ्कनके उदाहरण प्राप्त होते हैं। जैन साहित्यके अनुसार २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ श्रीकृष्णके चचेरे भाई थे। इसलिए नेमिनाथके जीवन सम्बन्धी दृश्योंके साथ कृष्णका भी अङ्कन हुआ है। उदाहरणार्थं आबूके विमलवसहीमें कालियदमन, चाणूर वध तथा लूणवसहीमें श्रीकृष्ण जन्म, दधिमंथन, रासलीला आदिके दृश्य और खजुराहोके पार्श्वनाथ मन्दिरमें यमलार्जुन उद्धार का दृश्य उत्कीर्ण है।

राजपूतकालमें भगवान्‌की लीलाओंके अङ्कनका प्रमुख माध्यम चित्रकला हो गयी, यद्यपि कहीं-कहीं शिल्पमें भी तत्सम्बंधी दृश्य प्राप्त हो जाते हैं। चित्तौड़ दुर्गके १५वीं शती के मन्दिरों तथा मथुराके १६ वीं शतीके गोविन्ददेवजीके मन्दिरमें श्रीकृष्णलीला दृश्य अवश्य है, किन्तु उनमें पूर्ववर्ती सजीवताका पूर्ण अभाव है। कालान्तरमें राजपूत नरेशोंकी छतरियों एवं कीर्तिस्तम्भोंके अलंकरण रूप में श्रीकृष्णलीला दृश्योंके अङ्कनकी परम्परा कुछ समयके लिए जीवित रही। बीकानेरके जूनागढ़ में 'गंगानिवास' की भित्तियोंपर रासलीला एवं वस्त्रहरणके दृश्य, बीसवीं शतीके स्थापत्यमें कृष्ण-लीला अङ्कनके साधारण परन्तु महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

"तुम रो रही हो देवकी ! अरे देवकी यह रोनेका समय नहीं, उत्सव-आनन्दोत्सव मनानेका समय है। वह भविष्य वाणी ! देवकी, संपूर्णलोक-लोकोंमें उस भविष्यवाणीकी गूँज है। देवकी, उस भविष्यवाणीके साथ ही साथ तुम्हारा नाम मथुराकी मेदिनीसे ऊपर उठकर लोक-लोकोंमें छा गया है। तुम धन्य हो देवकी !"

यमुना तीरे

श्रीआनन्द

दोपहरका समय था। देवकी अपने भवनके ऊपरी खण्डमें, एक कक्षमें पर्यंक पर लेटी हुई, वातायनसे यमुनाके कछारकी ओर देख रही थी। कछारमें, दूर-दूर तक, निस्तब्धता फैली हुई थी। ऊपर गगनमें कहीं-कहीं पक्षी उड़ते हुए दृष्टिगोचर हो रहे थे। नीचे कहीं-कहीं, गायें मस्तक झुकाकर चुपचाप हरी-हरी घासें चरनेमें संलग्न थीं। बीच-बीचमें शांत, नीरव और निस्पन्द वातावरणको भेदती हुई एक सकरुण रागिनी भी आ रही थी, जो बड़ी ही प्रभावमयताके साथ देवकीके हृदय-वीणाके तारोंको भीतर ही भीतर ध्वनित-सी कर रही थी।

वह सकरुण रागिनी ! वह किसके प्राण-स्तरोंको तोड़कर बाहर निकल रही थी कहा नहीं जा सकता, पर वह निकल-निकलकर उस स्तब्धतापर लोट रही थी, जो देवकीकी आँखोंके सामने दूर से दूर तक फैली हुई थी। रागिनीके एक-एक शब्द देवकीके प्राणोंको छू रहे थे। देवकीको ऐसा लग रहा था, मानों वह रागिनी, और उस रागिनीके शब्द उसके ही प्राणोंसे निकल रहे हों, उसके ही हृदय-छिद्रोंसे निकलकर गगनमें गूँज रहे हों। देवकी स्वयं मंद-मंद स्वरोंमें गुनगुना उठी—'वाट देख, हरि आवनकी। हरि आवनकी, प्रभु आवनकी रे। वाट देख, हरि आवन की।'

देवकीके प्राण रागिनीके शब्दोंपर लोटने लगे। देवकी अपनेको भूलकर गुनगुनाने लगी और गुनगुनानेलगी। शब्दोंकी तरंगों पर वह इस प्रकार बहने लगी कि उसे कुछभी ज्ञान न रहा, न अपना, न अपने आस-पासकी स्थितिका। देवकी बिल्कुल खो सी गई थी, किसी अकल्पित आशामें, किसी कल्पनामें और विचारोंके किसी स्वप्नमें। वसुदेव, देरसे देवकीके पीछे खड़े-खड़े उसकी गतिविधिको आँक रहे थे।

आखिर वसुदेवजीका हृदय अधीर हो उठा। वे देवकीके हृदयको जगाते हुए बोल उठे—'शुभे देवकी ! आर्ये !!'

वसुदेवके शब्द देवकीके शान्त कक्षमें खो-से गए। वे देवकीके बेसुध प्राणोंको छूनेको कौन कहे, उनके समीप तक न पहुँच सके। वसुदेव पैरोंको दबाते हुए, धीरे-धीरे कुछ और अग्रसर हुए और देवकीके पर्यंकके पास पहुँचकर, दाहिने हाथकी उँगलियोंको, उसके स्कन्ध पर रखते हुए पुनः बोल उठे—'शुभे, आर्ये !'

देवकी चमत्कृत सी हो उठी। वह उठनेके प्रयत्नमें अस्त-व्यस्तसी हो गई। पर वसुदेवजीने उसे उठने न दिया। वसुदेवजी देवकीको बिठाते हुए पुनः अपने आप ही बोल उठे—'बैठो शुभे, बैठो ! तुम्हारे गीत, तुम्हारी रागिनी—'बाट देख, हरि आवनकी !' इस एकान्त में, तुम यह क्या गुनगुना रही हो शुभे !'

वसुदेवजी स्वयं पलंगपर बैठ गए। उन्होंने देवकी की मुखाकृतिकी ओर देखा। देवकीका मुख मण्डल आंसुओंसे सिक्त-सा होता जा रहा था। देवकीके नयनोंसे, निकल-निकलकर आँसू मोतीके समान उसके आनन-अंचलको भरते जा रहे थे। वसुदेवजीके स्नेहपूर्ण शब्दोंसे, देवकीके हृदयका कोई विषाद-बांध टूट पड़ा था, जिसके घेरेमें बँधी हुई करुणा पिघल-पिघलकर उसके नेत्रोंसे उमड़ कर बह रही थी।

वसुदेवजी विस्मयपूर्ण स्वरमें बोल उठे—'तुम्हारी आँखोंमें आँसू ! तुम रो रही हो शुभे !'

वसुदेवजीका हृदय दुखसे मथ उठा। वे दुःखसे विचारोंमें मग्न हो गए। कुछ देर तक मन ही मन सोचते रहे, फिर अपने ही आप बोल उठे—'तुम्हारी व्यथा ! तुम्हें अपनी इस व्यथाको बिना आँसू बहाए, चुपचाप सहन करना होगा शुभे !'

देवकीने अश्रुपूरित नेत्रोंसे वसुदेवजीकी ओर देखा। वसुदेवजी पुनः बोल उठे—'हाँ शुभे ! मैं सत्य ही कह रहा हूँ। तुम्हें अपनी व्यथा को अपने हृदय पर पाषाण रखकर चुपचाप ही सहन करना होगा। तुम देख रही हो न, सम्पूर्ण धरती कंसके अत्याचारोंसे चीत्कार कर रही है। तुम देख रही हो न कि, धर्मकी वाटिका उजड़ गई है और तुम देख रही हो न कि न्याय तरु केवल भय उत्पन्न करनेवाला वृक्ष-कंकालमात्र रह गया है।'

वसुदेवजी एक दीर्घ निःश्वास लेते हुए मौन हो गये। ऐसा लगा, मानों उनका कंठ विजड़ित-सा हो गया हो। देवकीने पुनः वसुदेवजीकी ओर देखा। देवकीकी आँखोंके आँसू अब सूखते से जा रहे थे। आँखें ऐसी बन गई थीं, मानों वे बादल हों, जो बरसकर, सुसता रहे हों और फिर बरसनेके यत्नमें हों।

वसुदेवजीने पुनः देवकीकी ओर देखा, और कुछ देर तक सोचकर, फिर सोचते ही सोचते कहा—'चारों ओर अन्यायकी ज्वाला जल रही है शुभे, चारों ओर ! अन्यायकी इस ज्वालामें, तुम्हें चुपचाप, बिलकुल चुपचाप·········।'

वसुदेवजी बीचमें ही रुक गए। ऐसा लगा, मानों आगेकी बातको कहनेमें उनके प्राण काँप उठे हों और उनका कंठ जकड़ उठा हो। देवकीने वसुदेवजीकी ओर देखा। वसुदेवजीकी आँखोंमें सचमुच विवशतासी नृत्य कर रही थी।

देवकी आवेगसे, अपने अन्तरकी विक्षुब्धताको उँडेलती हुई बोल उठी—'अपनी संतानोंकी आहुति दे देनी चाहिए। क्यों यही न—क्यों यही न !!'

'हां देवकी यही—बिलकुल यही।' पर यह स्वर वसुदेवजी का नहीं था। देवकी और वसुदेवजी दोनों ही विस्मित होकर द्वारकी ओर झांक उठे। नारदजी मुसकराते हुए कक्षमें प्रवेश कर रहे थे।

देवकी और वसुदेवजी, दोनोंही उठकर नारदजीके सम्मुख झुक गए। नारदजीने दाहिना हाथ ऊपर उठाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—'अखण्ड सौभाग्यवती हो देवकी, अखंड सौभाग्यवती !!'

नारदजी आशीर्वाद देते हुए आसंदी पर उपविष्ट हो गये। नारदजीने देवकीकी ओर देखा। देवकीकी आँखें नारदजीको देखकर फिर भर आई थीं। ऐसा लग रहा था, मानों देवकी अपनी भरी हुई आँखोंसे, नारदजीको अपने अन्तर्व्यथाकी कहानी सुना रही हो।

नारदजी विलम्ब न लगाकर, दृढ़ विश्वासकी वाणीमें बोल उठे—'तुम रो रही हो देवकी ! अरे देवकी यह रोनेका समय नहीं, उत्सव-आनन्दोत्सव मनानेका समय है। वह भविष्यवाणी ! देवकी, सम्पूर्णलोक-लोकों में उस भविष्यवाणी की गूंज है। देवकी, उस भविष्यवाणीके साथ ही साथ तुम्हारा नाम मथुराकी मेदिनीसे ऊपर उठकर लोक-लोकोंमें छा गया है। तुम धन्यहो देवकी ! तुम उस अभयपुरुषकी माँ बनने जा रही हो देवकी, जिसकी वन्दना अपने कोटि-कोटि रंध्रोंसे करनेके पश्चात्‌भी मेदिनी तृप्त न होगी ! पर देवकी पर......'

नारदजीकी वाणीके तार, बीचमेंही कसे गए! मौनके साथही साथ गंभीरता नारदजीके आननपर नाच उठी। नारदजी गंभीर होकर सोचने लगे। देवकीने विस्मित दृष्टिसे नारदजी की ओर देखा। नारदजी विचारोंकी तरङ्गोंमें बहे रहे जा रहे थे। ऐसा लग रहा था, मानों वे सोचते-सोचते, तारोंका स्वर मिला रहे हों !

देवकीको, अपनी ओर देखते देखकर, नारदजी पुनः गंभीरताके साथ बोल उठे—"पर देवकी, तुम्हें उस अभयपुरुषके जन्मके पूर्वकी अपनी सभी सन्तानोंकी आहुति कंसके अन्याय की अग्नि-ज्वालामें देनीही होगी ! देनी होगी उस अभयपुरुषके जन्मकेलिए देवकी, जो धरतीका सुख और सौभाग्य बनकर तुम्हारी कुक्षिमें प्रकट होनेवाला है। तुम नहीं जानती देवकी, उस दिनकी भविष्यवाणी किस प्रकार मंदराचल शैल बनकर कंसके हृदयका मंथन कर रही है ! सच देवकी, उस दिन वसुदेवजीकी वाणीमें, माँ भारतीही समाविष्ट हो गई थीं, जिसके प्रभावमें फँसकर कंसने तुम्हें अपनी खड्गकी धारपर सुलानेसे छोड़ दिया था ! पर देवकी, तुम यह न समझो, कि कंस निश्चिन्त है ! कंसने तुम्हारे आगे-पीछे, चारों ओर, गुप्तचरोंका जाल बिछा रक्खा है ! उसे तनिकभी शंका हुई कि तुम अपनी संतानें उसके चरणों पर डालनेमें पीछे हट रही हो, तो सच देवकी, सच, उसकी तलवार तुम्हारे लिये काल-सर्पिणी बन जायगी ! फिर उस अभयपुरुषका जन्म, मेदिनीका सुख सौभाग्य ! सोचो देवकी सोचो !!......!"

नारदके अधर काँप उठे उनके लोम-लोममें, जैसे सिहरनसी उत्पन्न हो उठी। देवकी ने नारदकी ओर देखा ! नारदकी आकृति पर अलौकिक ज्योति-सी खेल रही थी। देवकी झुककर नारदके चरणों पर गिर पड़ी नारदने देवकीके सिर और पीठ पर हाथ फेरा। देवकोको लगा, जैसे उसके प्राणोंमें शक्तिका ज्वार फूट पड़ा हो, नारदने देवकीको

उठाते हुए उसके मुखकी ओर देखा । देवकीका मुख स्वर्गीय आभासे देदीप्यमान हो रहा था।

देवकी विनत होकर गंभीर स्वरमें बोल उठी—"आज्ञा शिरोधार्य है देव ! अब आप इस देवकीके आँखोंमें कभी आँसू न देखेंगे, कभी आँसू न देखेंगे।"

"हाँ देवकी !—नारदने कहा—मैं उस समयभी तुम्हारी आँखोंमें आँसू न देखूँ, जब तुम एक-एक करके अपनी सात सन्तानोंकी, कंसकी अन्याय वेदिकापर बलि चढ़ा दो। मैं सच कहता हूँ देवकी, तुम्हारे एक-एक संतानकी बलि उस अभयपुरुषके जन्मके लिए पथ प्रशस्त करेगी !"

देवकीने नारदकी ओर देखा, और फिर उसके मुख से अपने आपही निकल पड़ा— "अभयपुरुष, अभयपुरुष ! देव, ! यदि······यदि······।"

नारद बोल उठे—"हाँ, हाँ कहो, देवकी अवश्य कहो ! तुम जब मेदिनीके कल्याण के लिए, धरतीके सुख-सौभाग्यकेलिये, अपनी सात-सात सन्तानोंकी बलि देने जा रही हो, तब तुम्हें सब कुछ पूछनेका—सब कुछ कहनेका अधिकार है देवकी, सब कुछ ! तुम्हारेही स्वरमें यदि······यदि······अभयपुरुषने जन्म न लिया तो ! देवकी तुम माँ हो ! तुम आकाशवाणी नहीं, ब्रह्मवाणी परभी सन्देह प्रकट कर सकती हो ! पर देवकी, मैं अपनी संपूर्ण साधनाओंकी शक्तिके साथ पृथ्वी पर पदाघात कर रहा हूँ। यदि धरती डोल जाए, तो तुम्हें अभयपुरुषके स्वागतके लिए, अपने हृदयके टुकड़ोंको पुष्पके समान बिखेरनाही होगा।"

देवकीने मंत्राभिभूता-सी नारदकी ओर देखा । नारद उठकर खड़े हो गए। उन्होंने एक बार आकाशकी ओर देखा, फिर धरतीकी ओर। धरतीकी ओर देखते हुए, नारदजीका दाहिना पग उठ पड़ा । पर वह धरती पर गिरे, उसके पूर्वही मेदिनी काँप उठी ।

देवकी और वसुदेव—दोनोंही नारदके चरणों पर लुढ़क पड़े, और साथही उनकी कंपित वाणी उनके सूने कक्षमें गूँज उठी—"बस कीजिये देव, बस कीजिये । अभयपुरुषके स्वागतमें हम सब कुछ करेंगे, सब कुछ सहेंगे !!"

वसुदेव और देवकी ने स्वस्थ होकर देखा, नारदजी कक्षके बाहर निकलकर, धीरे-धीरे जा रहे थे। वसुदेव देवकी को ऐसा लगा, मानों उनके हृदयमें अभयपुरुषके जन्म-विश्वासकी वर्षा हो रही हो !!

याचना

हे सर्व प्रकाशक ! सर्वोत्पादक परमेश्वर ! सब प्रकारके दुष्ट आचरणों, दुःखद एवं बुरे व्यसनोंको दूर करो। जो सुखदायक तथा कल्याणकारी है, उसे हमें प्राप्त कराओ।

हे परमेश्वर ! प्रभो ! हे स्वामिन् ! मेरी आयुकी रक्षा करो। मेरे प्राणका पालन करो मेरे अपानकी रक्षा करो। मेरे व्यानकी रक्षा करो। मेरी आँखोंका पालन करो। मेरे कानोंका पालन करो। मेरी वाणीको तृप्त करो। मेरे मनको प्रसन्न करो। मेरे आत्मा या देहकी रक्षा करो। मुझे ज्ञान-ज्योति प्रदान करो।

वर्तमान निराशापूर्ण जीवनके परिवेशमें
अर्जुनके विषादयोगका विवेचन

"गीता ने केवल महाभारत कालके मानवको ही कर्म (कर्तव्य) अथवा स्वधर्माचरणकी प्रेरणा नहीं दी, वरन् आज भी उसका सन्देश सजीव एवं प्रेरक मन्त्र बना हुआ है।"

अर्जुनकी मोहासक्ति और उसका निराकरण

डा० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका मोहासक्तिको दूर करनेवाला पुनर्जागरणका महान् सन्देश अर्जुनके विषादयोगकी पृष्ठभूमिपर प्रतिफलित हुआ है। आजके युगसे उत्पन्न निराशाकी जो अभिव्यक्ति चारों ओर हो रही है, उसमें भी उक्त सन्देश विषादका परिहारक सिद्ध होगा। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है कि, 'संभवामि युगे-युगे।'

अर्जुनके विषादयोगकी चर्चा कर ली जाये। धनुर्धर अर्जुन महावीर था, उसने उत्तर-गो-ग्रहणके समय अकेलेही भीष्म पितामह, द्रोण व कर्णके दांत खट्टे कर दिये थे। सदा विजयी होनेवाला और सर्व नरोंमें एकही सच्चा नर है, ऐसी उसकी ख्याति थी। वीर वृत्ति तो उसके रोम-रोममें भरी हुई थी। वह समरभूमिमें कृत निश्चय होकर, कर्तव्य भाव से ही प्रस्तुत हुआ था। इसलिए उसका युद्ध करने से विमुख होना अपने विपक्ष में स्वजन समूहको देखकर उनके प्रति मोहासक्ति थी, कायरता एवं अहिंसाकी वृत्ति जागनेके कारण नहीं। किन्तु अपनी इस निर्बलताको प्रकट न करके वह बराबर श्रीकृष्णसे युद्धको पाप बताकर उससे विरत होनेकी प्रार्थना करता रहा। युद्धसे कुलक्षय होगा, धर्मका लोप होगा, स्वैराचार बढ़ेगा, अकाल आ पड़ेगा आदि—समाज पर आनेवाले अनेक सङ्कटोंका वर्णन करके वह युद्ध से विमुख होनेकी प्रार्थना करने लगा। किन्तु यह तथ्य नहीं था। तथ्य उसकी मोहासक्ति थी, जिसे दूर करनेकेलिए श्रीकृष्ण ने गीताका पवित्र उपदेश दिया और अन्तमें अर्जुन ने भी अठारहवें सर्गमें अपनी मूलभूत निर्बलता और उसके निराकरणको इन शब्दों में स्वीकार किया—

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनंतव ॥"

यह तो अर्जुनकी विषादकी भूमिका थी, हृदय मंथन था। युगकी विभीषिकाओंसे सन्तप्त आज का प्राणी भी जीवनको दुःखका ढेर मानने लगा है, उसकी देहासक्ति बढ़ गई है,

और आध्यात्मिकतासे शून्य उसका जीवन चिन्तापूर्ण बन गया है। भौतिकतासे पूर्ण, यंत्रयुगकी विषम आर्थिक परिस्थितियों से संतप्त, मानसिक उलझनोंसे पूर्ण और निराशाके सागरमें गोते खानेवाले आजके विश्वमानवके लिए गीताका सन्देश महान् सन्देश है, प्रेरक मन्त्र है। यहाँ मुझे विनोबा भावेकी कुछ पंक्तियाँ बड़ी सटीक मालूम पड़ती हैं—"अर्जुनके पास तो श्रीकृष्ण थे। हमें श्रीकृष्ण कहाँ मिलेंगे, ऐसा हम न कहें। श्रीकृष्ण नामक कोई व्यक्ति है, ऐसी ऐतिहासिक उर्फ भ्रामक समझकी उलझनमें हम न पड़ें। अन्तर्यामीके रूपमें श्रीकृष्ण हम प्रत्येकके हृदयमें विराजमान हैं। हमारे सबसे अधिक निकट वही हैं। तो हम अपने हृदयके सब छल-मल उसके सामने रख दें और उससे कहें—"भगवन्! मैं तेरी शरण हूँ, तू मेरा अनन्य गुरु है। मुझे उचित मार्ग दिखा। जो मार्ग तू बताये, मैं उसी पर चलूँगा। यदि हम ऐसा करेंगे तो वह पार्थ-सारथी हमाराभी सारथ्य करेगा, अपने श्रीमुखसे वह हमें गीता सुनायेगा और हमें विजयलाभ करा देगा।" गीता कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा मोह-निरसन योगका अपूर्व ग्रन्थ है। गीताने केवल महाभारत कालके मानवको ही कर्म (कर्तव्य) अथवा स्वधर्माचरणकी प्रेरणा नहीं दी, वरन् आज भी उसका सन्देश सजीव एवं प्रेरक मंत्र बना है। अपने क्षत्रियधर्मको छोड़कर परधर्म (सन्यास)की ओर आकृष्ट अर्जुनका श्रीकृष्णने इन शब्दों से उद्बोधन किया—

श्रेयोस्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

भगवान्ने अर्जुनसे कहा—"अपने धर्मको देखकरभी तू भय करनेके योग्य नहीं है; क्योंकि धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारक धर्म क्षत्रियके लिए नहीं है।"

स्मरण रखिये, महाभारतका युद्ध कुरुक्षेत्रमें हुआ, जो धर्मक्षेत्र था, क्योंकि वह धर्मयुद्ध था। धर्म संस्थापनार्थही श्रीकृष्ण ने उस युद्धका समर्थन किया। और भी—

यद्दच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥

"हे पार्थ अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्गके द्वाररूप इस प्रकारके युद्धको भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं।"

क्योंकि सृष्टिका रहस्य तो इस प्रकार है—

"न जायते म्रियते वाकादाचनायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

"यह आत्मा किसी कालमें भी न जन्म लेता है, और न मरता है अथवा न यह आत्मा होकर फिर होनेवाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीरके नाश होने परभी यह नाश नहीं होता है।"

इसलिए तुम्हें स्वधर्मानुचरण करना चाहिए। सुमनके सुन्दर खेल खेलो—कर्म करो, किन्तु उसमें लिप्त मत हो। इसीलिए मनको 'सुमन' कहा। सुमन कैसे बने? सब धर्मोंके मूलमें उसी ब्रह्मका दर्शन करना और उसी "एक" की शरण में जाकर कर्म करना—'मामेकं शरणं व्रज।'

"जिस भूमिमें स्वर्ग सुखका तिरस्कारकर देवतागणभी आने को लालायित रहते हैं, उस भूमिका कण-कणही तीर्थस्वरूप है। उसकी समस्त मृत्तिका पवित्र है । रज मस्तकपर चढ़ाने योग्य है, परन्तु इस भूमि पर भी कोई-कोई स्थान विशेष पूज्य, प्रातः स्मरणीय एवं दर्शनीय हैं।"

श्रीविश्वामित्र मुनिकी तपोभूमि

श्रीउमाशंकर दीक्षित एम. ए.

अन्तर्जगत्में दैवीशक्तिके प्राणमय कोशके अवलम्बनसे जो अधिष्टान अर्थात् नित्यावस्थान होता है, उसे तीर्थ कहते हैं। जिस भूमिमें स्वर्गसुखका भी तिरस्कारकर देवतागण भी आनेको लालायित रहते हों, उस भूमिका कण-कणही तीर्थस्वरूप है। उसकी समस्त मृत्तिका पवित्र है। रज मस्तकपर चढ़ाने योग्य है, परन्तु इस भूमिपर भी कोई-कोई स्थान विशेष पूज्य, प्रातः स्मरणीय, एवं दर्शनीय हैं। उनके प्रति उसी प्रकारकी श्रद्धा और भक्ति भी श्रद्धालु एवं भक्तजनों द्वारा अर्पितकी जाती है। कारण स्पष्ट है, भारतभूमि तपोभूमि, तथा देवभूमि है। यहां जिस किसी स्थानपर किसी प्रमुख देवका प्रादुर्भाव हुआ, या उस स्थानका देव विशेषकी प्रमुख लीलासे किंचित् मात्रभी सम्बन्ध हुआ, अथवा किसी महान् आत्माके द्वारा वह तपोभूमि, यज्ञभूमि अथवा साधनाभूमिके रूपमें ख्यात हुआ, तो वह स्थान तत्सम्बन्धी अपनी विशेष महत्ता रखता है और अपने महान् सर्जकोंकी परमपावनी सत्कथाओं द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

नूतन सृष्टि कर्ता श्रीविश्वामित्रजी भारतकी अनुपम निधियोंमें से हैं। उन्होंने इस भूमिमण्डलपर अनेक यज्ञ किये। उनके यज्ञ-स्थलोंमें श्रीधरणीधर क्षेत्र, जहाँ श्रीधरणीधर तीर्थ नामका सुन्दर सरोवर है, एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। यह उत्तरप्रदेशके अलीगढ़ जिलेमें, अलीगढ़ मथुरा राजमार्ग पर, अलीगढ़से २२ वें तथा मथुरासे लगभग १८ वें मील पर स्थित है। वह आज 'वेसवा'के नामसे प्रसिद्ध है। यह तीर्थ श्रीविश्वामित्रजीके यज्ञ करनेका स्थान था, ऐसी जनश्रुति है। सं० १९३३ में वेसवा रियासतके संचालक श्रीमान् राजा गिरिप्रसादसिंहने इसे चारों ओरसे पक्का करानेका दृढ़ संकल्प करके कार्य आरम्भ किया था, परन्तु बीचमें ही राजा साहबका स्वर्गवास हो गया। दो ओर का किनारा पक्का हुआ, दो ओर का अभी तक कच्चाही है। परन्तु अन्य धर्मावलम्बीजनोंने सुन्दर सीढ़ियाँ, घाट, एवं धर्मशालायें बनवाकर उस कमीको पूरा करनेका सफल प्रयास किया है। श्रीधरणीधर सरोवरको पक्का करानेके समय, सफाई करनेपर, उसके भीतरसे जले नारियल, सुपारी एवं यज्ञकी राख बहुत अधिक मात्रामें निकली थी, जिससे उसके यज्ञीय कुण्ड होनेमें शंका नहीं रह गई। इसके अतिरिक्त उसके भीतरसे हजारों शालिग्रामकी बटिया आदिभी

निकली थीं, जिनमेंसे कुछ यहींके अत्यन्त, प्राचीन श्रीरामचन्द्रके मन्दिरमें अबतक विद्यमान हैं। शेषको भक्तजन पूजार्थ ले जाते रहे हैं। चार बड़े-बड़े पत्थरके गजग्राह आदिकी मूर्तियों से अङ्कित पतनालेभी निकले थे, जिनमें दो अभी तक श्रीधरणीधरके पश्चिमीतटपर विद्यमान हैं। शेष दो भारी होनेके कारण भीतरही रह गये हैं। यह पतनाले यज्ञके समय कुण्डके चारों कोणोंमें घृतकी आहुतिकेलिए बनाये गये थे। इस प्रकार इन पतनालों से भी उसके कुण्ड होनेमें कोई सन्देह नहीं रहता है।

धरणीधर नामके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यह स्थान पृथ्वी का मध्य तथा नाभि-रूप है। शेषनागजी ने सन्तुलन ठीक रखनेके लिए इसीके नीचे अपने फनोंके द्वारा धरणीको धारण किया था। विद्वानोंका कहना है कि इसी कारण इसे धरणीधर कहा जाता है। इसे पृथ्वीका नाभि केन्द्र जानकरही प्राचीनकालमें विश्वामित्रजीने यहीं श्रीधरणीश्वर महादेवजी को मन्त्र, तप, एवं यज्ञ आदिसे प्रसन्न करनेका निश्चय किया था। निम्नांकित श्लोक से भी, जो इस स्थानके महात्म्यके रूपमें है, यही विदित होता है—

रम्यं तीर्थं वरं श्रेष्ठं धरणीधर नामकम्,
विश्वामित्र तपः पूतं दर्शनात्पाप नाशनम् ।
त्रैलोक्य विश्रुतं क्षेत्रं विश्वामित्रो महामुनिः,
मन्त्रसिद्धै तपः सिद्धै यज्ञ सिद्धै निषेवितम् ।

विश्वामित्रजीने इसे शिवजीका मानस तीर्थं मानकरही उन्हें हविष्य और तपसे सन्तुष्ट किया था। देखिये—

इदं तन्मानसं तीर्थं विज्ञातं मे विनिश्चितं,
अत्रैवाराधयिष्यामि भगवन्तं सनातनम् ।
जगद्गुरुं महादेवं परब्रह्म स्वरुपिणम्,
विश्वेश्वरं शिवं शान्त मनंतमपराजितम् ।
इत्येवं सतु विज्ञाय मुनिः मोक्ष परायणः,
हविषा तपसा चेवे तोषयामास शंकरम् ।

तब धरणीश्वर महादेवने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि, मुनिश्रेष्ठ, विश्वामित्र, आप तीनों लोकोंमें पूजित होंगे तथा आपकेही नामसे इस नगरीका नाम विश्वामित्रपुरी होगा। यह शुभक्षेत्र देवर्षियों और पितृश्वरोंद्वारा सदैव सेवित रहेगा—

विश्वामित्रो मुनिश्रेष्ठः त्रैलोक्य पूजितो भव,
नाम्नातव पुरी रम्या विश्वामित्र पुरी सदा।
यत्क्षोत्रे समुत्युपुन्यं देवर्षि पितृ सेवितम्,
के चिद्देव स्वरूपेण केचित्पादप रुपिणः ।
स्यास्यन्यत्रा शुभ क्षेत्रे कलावपि न संशयः,
इत्युक्त्वा श्रीमहादेव तत्रैमन्तर्दधे हरः ।

इस प्रकार यह धरणीधर क्षेत्र विश्वामित्र क्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह मुक्तिका दाता है। धरणीधर क्षेत्र में श्रीधरणीश्वर महादेवजीका प्रसिद्ध मन्दिर है। शिवरात्रि पर यहाँ जागरण आदिका भव्य एवं दर्शनीय उत्सव मनाया जाता है। यही इस क्षेत्रके अधि-ष्ठाता देवता हैं। श्रीसंकटमोचन हनुमानजीकी झाँकीभी दर्शनीय है। कुछ पूर्वकी ओर एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिरहै, जिसमें श्रीसीतारामजीकी झाँकी, जन-मन-रंजन है। वहीं पार्श्वमें इस वन खण्डके अधिपति श्रीवनखण्डेश्वर महादेवजीके दर्शन होते हैं। महेश्वर भगवान्‌की

महिमा भी अपार है। असुर-निकन्दन श्रीबलरामजीका मन्दिर बड़ाही भव्य है। यहाँ प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला षष्टीको देवछठका बहुत बड़ा मेला लगता है। यहीं श्रीहनुमानजीका प्राचीन मन्दिर है। सिद्ध क्षेत्रमें दिगम्बर देवी, केला देवी, तथा भगवान् भूतेश्वरका भवबन्धन-निवारक, दिव्य दर्शन प्राणियोंको पवित्रकर देता है। यहाँ ब्रह्मविद्या-रूप महात्माओंकी वाणीका प्रवाह सतत रूपसे बहता रहता है। यहां बहता हुआ समीरभी मानसिक, कायिक तापोंको शान्त कर देता है।

मोहक, शान्त वातावरणके कारण धरणीधर क्षेत्रमें अनेक संत महात्माओंका आविर्भाव हुआ। इस क्षेत्रकी दिव्य मूर्तियोंमें श्रीवटुकनाथजी, श्रीश्रवणनाथजी आदि कई सिद्धसन्त अधिक प्रसिद्ध हो चुके हैं। निर्भयघाटपर कई सन्तों, महन्तों की समाधियाँ बनी हुई हैं। कई सन्तोंकी अनेक चमत्कारपूर्ण लीलायेंभी प्रसिद्धहैं। जैसे, श्रीनिर्भयानन्दजीने एकबार भंडारेमें घीकी कमी पड़ जानेके कारण धरणीधर तीर्थके जलसे पूआ आदि पकवानोंको सिंकवाया था, इसी प्रकार खाली पात्रसे ही इच्छानुसार बालकोंको प्रसाद बाँटा था तथा एक मृत बालकको पुनः जीवन दान दिया था। श्रीश्रवणनाथजी भी बहुत बड़े सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने अपनी सिद्धियोंसे बड़े-बड़े सिद्धोंकोभी चकित कर दिया था। रात्रिमें सोते समय उनके शरीरके अवयव यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहते थे। वे एकही समयमें भिन्न-भिन्न मनुष्योंको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें दर्शन देते थे। मुरसान नरेशके एक बिगड़े हुए हाथीको उन्होंने केवल मृदु बचनके द्वारा ही ठीककर दिया था। इस प्रकार उनकी सिद्धियोंके सम्बन्धमें बहुत-सी चमत्कारपूर्ण बातें कही और सुनी जाती हैं। श्रीनिर्भयानन्दजीने ज्ञान, भक्ति, वैराग्यसे सम्बन्धित बहुतसे पदोंकी रचनाकीहै। उनके पद 'निर्भय वाणी' और 'निर्भय प्रकाश' आदि ग्रन्थोंके रूपमें मिलते हैं। कई दूसरे सन्तभी, जिनमें स्वामी शंकरानन्दजीका नाम बड़े आदरसे लिया जाता है, बड़े विद्वान थे। स्वामी शंकरानन्दने ही राजा गिरिप्रसादसिंहको धरणीधर तीर्थके पुनरुद्धारकी प्रेरणा दी थी। उन्हींकी प्रेरणासे यहाँ घाट, सीढ़ियाँ, देवालय, बाग-बगीचे, और धर्मशालायें भी बनीं। संस्कृत विद्यालयभी उन्हींकी प्रेरणाका परिणाम है।

श्रीस्वामीजी अच्छे साहित्यिक एवं विद्वान् महात्मा थे। उन्होंने विज्ञान नाटक, ज्ञान गुण दर्पण नाटक, आत्मरामायण आदि कई ग्रन्थों की रचनाकी। इनके अतिरिक्त सद्गुरुओं तथा सन्त महात्माओंके जीवन चरित्र लिखकर उनका जनता में प्रचार किया। राजा श्रीगिरिप्रसादसिंहभी बड़े भक्त एवं विद्वान् थे। उन्हें यजुर्वेदसंहिता स्वरसहित कंठस्थ थी। उन्होंने यजुर्वेदका हिन्दी भाष्यभी, गिरधर भाष्यके नामसे किया है, जो प्रकाशित हो चुका है। उनके और भी कई ग्रन्थ हैं, जो उनके निजी छापेखानेमें ही छपे हैं। उनके भाष्यके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उन्होंने अपने भाष्यकी एक प्रति मैक्समूलरके पास भेजी थी। उसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका 'ऋग्वेद भाष्य भूमिका' नामक ग्रन्थभी मैक्समूलरके पास पहुँचा था। मैक्समूलरने दोनों ग्रन्थोंको देखकर यह निर्णय दिया था कि, स्वामी दयानन्दजीका भाष्य भाष्य न होकर उनकी सम्मति है, परन्तु अलीगढ़जिलाके बेसवाँ-विश्वामित्रपुरीके ठाकुर साहबके भाष्यसे यह ज्ञात होता है कि, भारतवर्षमें अभी तक क्षत्रियों में भी वेदविद्या विद्यमान है।

इस प्रकार धरणीधर एक अत्यन्त धार्मिक और सांस्कृतिक पुण्यक्षेत्र है, जो चिर दिनोंसे अपनी महत्ताके लिए प्रसिद्ध है।

श्रीगोपीकृष्ण खेमका चैरिटी ट्रस्ट

श्रीगोपीकृष्ण खेमका चैरिटी ट्रस्टकी स्थापना सन् १९४८ में स्व० श्रीजोहारमलजी खेमकाके सुपुत्र श्रीगोपीकृष्णजी खेमकाने की थी। मानवमात्रके कल्याण और राष्ट्रके अभ्युदयके उद्देश्यसे इस धार्मिक और परोपकारी संस्थानका आविर्भाव हुआ। इस संस्थानकी मूल पूंजी ५,०८,०००)— (पांच लाख आठ हजार) रुपये थी, जिसे स्वयं खेमकाजीने अर्जित किया था तथा कुछ दान स्वरूप भी प्राप्त हुआ था।
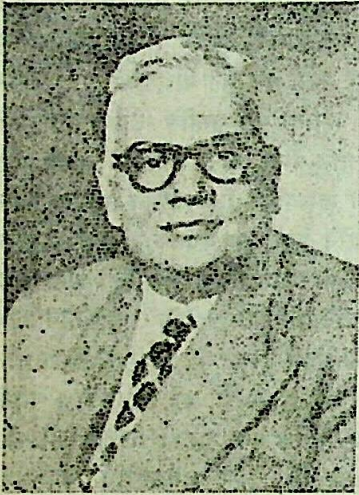
स्वर्गीय श्रीगोपीकृष्ण खेमका

जबसे इस संस्थानका उदय हुआ, वह अपने लक्ष्यको पूरा करनेकेलिए निरन्तर सचेष्ट है और मानव-सेवाकेलिए सतत क्रियाशील है। पिछले बीस वर्षोंमें इसने भारतीय संस्कृतिके अभ्युत्थान और धार्मिक कार्योंकेलिए उल्लेखनीय कार्य किए हैं। इस ट्रस्टने पच्चीस लाखसे भी अधिक रुपये दानमें दिए। इसके द्वारा तीन अस्पताल (जी० के० खेमका चैष्ट क्लिनिक हास्पिटिल आदि) चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त विद्यालय भवनोंके निर्माण हुए हैं। इंजीनियरिंग कालेज, प्राकृतिक चिकित्सागृह आदि बनवाये गए हैं और स्कूलबसों, अनाथ स्त्रियोंकी सहायता, छात्रोंकी पढ़ाईके खर्चकी व्यवस्था आदिके रूपमें जनसेवाके अनेक उल्लेखनीय कार्य किये गए हैं।

यह प्रसन्नताकी बात है कि खेमका चैरिटी ट्रस्टने अनेक प्राचीन मन्दिरोंके भी जीर्णोद्धार करवाये हैं। अभी हालमें ही ट्रस्टने भगवान् श्रीकृष्णके परम प्राचीन, इतिहास-प्रसिद्ध, पावन जन्मस्थानपर तीस-पेंतीस लाख की लागतसे निर्मित हो रहे सुविशाल भागवत-भवनकेलिए ५०,०००)— (पचास हजार रुपयों) का दान दिया है तथा और भी देनेका विचार कर रहा है। इस दानके लिए श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ सर्वश्री खेमका चैरिटी ट्रस्ट और उसके संमानित सदस्योंका अत्यधिक आभारी है।

सन् १९४९ में श्रीगोपीकृष्णजी खेमका का

श्रीमती गीनीदेवी खेमका

निधन होगया था। उसके बाद प्रमुख ट्रस्टीजन इस प्रकार हैं—(१) श्रीमती गीनीदेवी, (२) पंडित जगदीशनारायण भान (डाइरेक्टर पंजाब नैशनल बेंक लिमिटेड, इण्डिया स्टीमशिप लि०, मैनेजिंग डाइरेक्टर-नेशनल इन्सुलेटेड केबुल) (३) श्रीसुरेशचन्द्रराय (भूतपूर्व शैरिफ कलकत्ता तथा अनेक कम्पनियोंके डाइरेक्टर) और (४) श्रीशिवशंकर भरतिया (स्व० श्रीखेमकाजीके जामाता)।

इन सब सम्मानित ट्रस्टियोंमें पण्डित जगदीशनारायणजीभानने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके लोकोपकारी कार्योंके प्रति विशेष अनुराग प्रदर्शित किया है और अपने व्यक्तिगत ट्रस्टसे भी भागवत-भवनके निर्माण हेतु १०,०००)— (दस हजार रुपए) प्रदान करनेका निर्णय किया है। उनकी इस कृपाकेलिए भी संघ विशेष रूपसे आभारी है।

विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ है कि, सम्मान्य पण्डित श्रीजगदीशनारायणजीभान सर्वश्री खेमका चैरिटी ट्रस्टसे भागवत-भवनकेलिए ५०,०००)— रु० (पचास हजार रुपए) और प्रदान करवानेकेलिए प्रयत्नशील हैं। यदि उनका प्रयत्न सफल हुआ, जिसकी पूर्ण सम्भावना है, तो संघको सर्वश्री खेमका चैरिटी ट्रस्टकी ओरसे १,००,०००)—(एक लाख रुपये) प्राप्त हो जायेंगे और वह भागवत-भवनकेलिए डालमिया-उद्योग-समूहके बाद सबसे बड़े दाताके रूपमें प्रतिष्ठित होगा।

इस पुण्यकार्यकेलिए सर्वश्री खेमका चैरिटीट्रस्टके सुयोग्य ट्रस्टियोंको जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। आशा ही नहीं, विश्वास है कि, इन सब सज्जनोंकी देखरेखमें सर्वश्री खेमका चैरिटी ट्रस्ट उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ जनसेवाके कार्य करता रहेगा और कभी वे सब महानुभाव व्रजकी ओर पधारकर श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके दर्शनके साथ-साथ यहाँके लोकोपकारी निर्माण-कार्योंका अवलोकन करेंगे।

इस अवसरपर सम्मान्य सेठ श्रीदेवीदत्तजी भालोटियाके सुपुत्र श्रीसत्यनारायण भालोटियाके प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं, जिन्होंने सर्वश्री खेमका चैरिटी ट्रस्टके सम्मानित सदस्योंका ध्यान भगवान् श्रीकृष्णके इतिहास-प्रसिद्ध, लोकपावन जन्मस्थानकी ओर आकर्षित किया और भागवत-भवनके निर्माण-कार्यमें सहायता प्रदान करनेकेलिए प्रवृत्त किया। हमें श्रीसत्यनारायणजी भालोटियासे और भी अधिक शुभाशाएँ हैं। वे बड़े प्रतिभाशील, परोपकार-परायण और होनहार नवयुवक हैं। भगवान्से प्रार्थना है कि, वे उनको अधिकाधिक उन्नति प्रदान करें।

भगवानदास भार्गव

(अवकाश प्राप्त, जिला जज)

संयुक्त मन्त्री

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ,

मथुरा।

"श्रीद्वारिकानाथ भार्गवकी सार्वजनिक जीवनमें सचाई, निःस्वार्थ भाव, और ईमानदारी थी। आपने अपना जीवन जनता जनार्दनकी सेवामें समर्पित कर दिया था। न उनमें आत्म विज्ञापन था, न यश-लोलुपता। वे निर्लिप्तभावसे ठोस, रचनात्मक कार्यमें विश्वास रखते थे। उनका जीवन "परोपकाराय शतां विभूतयः"की उक्तिको पूर्णतया चरितार्थ करता है।"

गीतोक्त कर्ममार्गके उपासक श्रीद्वारिकानाथ भार्गव

श्रीभगवानदास भार्गव अवकाशप्राप्त, जिला जज

भगवान् श्रीकृष्णका कर्म-सन्देश मानव-जीवनकी वह निधि है, जिसके संस्पर्श मात्रसे किसीभी व्यक्तिका जीवन परिमार्जित, कुन्दन जैसा बन जाता है। यही बात स्वर्गीय श्रीद्वारिकानाथ भार्गवके सम्बन्धमें चरितार्थ होती है। सचमुच वे श्रीकृष्णके 'कर्मण्येवाऽधिकारस्ते' के सजग उदाहरण थे। जबसे वे सार्वजनिक कार्यक्षेत्रमें उतरे, तभीसे उन्होंने गीताके 'आलोक पंथ'को अपना इष्ट चुना और उनके जीवनकी अन्तिम सांसों तकमें 'चरैवेति-चरैवेति' का सिद्धान्त गूंजता रहा। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके पुनरुद्धार-कार्यमें भी उनका सहयोग महत्व का था। वे श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके सम्मानित सदस्य थे।

सन् १९४४ में जब ब्रह्मस्थ महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीयकी प्रेरणासे धर्ममूर्ति सेठ श्रीजुगलकिशोरजी बिरला ने श्रीकृष्ण-जन्मभूमिको, जो कटरा केशवदेवके नामसे प्रसिद्ध है, क्रय किया तो महामना मालवीयजी ने जन्मस्थानपर निर्माण-कार्य करनेकेलिए एक कार्यवाहक संस्था 'श्रीकृष्ण-जन्मभूमि-जीर्णोद्धार-समिति' स्थापितकी। तभीसे आप उसके सदस्यके रूपमें लक्ष्य-पूर्ति-हेतु सक्रिय रहे। किन्तु इससे पूर्व कि, यह संस्था कुछ कार्य करती, जन्मभूमिके ईदगाह लगे होनेके कारण मुसलमानोंने खरीदका अपना विशेष अधिकार बताकर पड़ोस अंश अर्थात् शुफाकी नालिश बारीतालाके नामसे करदी। इसके कुछ समय पश्चात् ही महामना मालवीयजीका स्वर्गवास हो गया और यह समिति भी निष्क्रिय हो गयी।

मुकदमेके निर्णयमें असाधारण विलम्ब देखकर श्रीद्वारिकानाथजी भार्गव ने सेठ श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाको सुझाव दिया कि, वे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका एक ट्रस्ट बना दें। उन्होंने स्वयंही ट्रस्ट-पत्रका पूर्वरूप तैयार किया और स्वर्गीय श्रीगणेश वासुदेव मावलङ्कर, श्री के० एम० मुन्शी, स्व० श्री एन० वी० गाडगिल, श्रीद्वारिकाप्रसाद मिश्र एवं श्रीगोविन्द मालवीय आदि अनेक महानुभावोंसे ट्रस्टके सदस्य बननेकी स्वीकृति प्राप्तकी। २१ फरवरी,

१९५१ को श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघकी स्थापना हुई और पुनरुद्धारका कार्य श्रीद्वारिकानाथजी भार्गवको सौंपा गया। अन्तमें मुकदमेका निर्णयभी ट्रस्टके पक्षमें ही हुआ। जीवन-पर्यन्त श्रीभार्गवजी सेवासंघके पथ-प्रदर्शकके रूपमें रहे। उनके परामर्शसे कार्यकर्ताओं को पूरा बल मिलता रहा। वास्तवमें श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके पुनरुद्धारमें उनका उद्योग बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ।

श्रीद्वारिकानाथ भार्गवका जन्म १ फरवरी १८८६ को मथुराके प्रतिष्ठित परिवारमें हुआ। बाल्यावस्थासे ही वे अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि थे। शिक्षा-संस्थाओंमें अपनी योग्यताके लिये उन्होंने सर्वत्र सम्मान पाया। एल० एल० बी० पास करनेके पश्चात् उन्होंने मथुरामें वकालत शुरूकी। इस क्षेत्रमें उन्होंने विशेप ख्याति अर्जितकी और अपनी ईमानदारी, सत्य-प्रियता, न्याय-समर्थन तथा अध्यवसायसे मूर्द्धन्य स्थान प्राप्त किया।

श्रीद्वारिकानाथ भार्गवने अपना क्षेत्र शिक्षा, समाज-सेवा एवं सांस्कृतिक जागरणको चुना। शिक्षाके क्षेत्रमें उनकी सेवायें व्यापक हैं। मथुरा नगरमें शिक्षाके प्रचार-प्रसारका श्रेय श्रीभार्गवजीकोही है। उन दिनों मथुरामें राजकीय हाईस्कूलके अतिरिक्त दो मिडिल स्कूल थे, जिनमें से एक किशोरीरमण पाठशालाथी। आप इसी पाठशालाके व्यवस्थापक नियुक्त हुए और इसको हाईस्कूलका रूप देनेकेलिए तन-मनसे जुट गये और अनेक बाधाओंका समाधान कर लक्ष्य-पूर्तिमें सफल हुए। आज वही किशोरीरमण पाठशाला इन्टर, डिग्री और पोस्ट ग्रेजुएटके रूपमें वटवृक्षकी भाँति अपनी शाखाओंका विस्तार कर रही है। कन्याओंकी शिक्षा के लिए किशोरीरमण गर्ल्स कालेजकी स्थापनाकी। अध्यापिकाओंकेलिए प्रशिक्षण कालेज तथा बालकोंकेलिए मान्टेसरी स्कूल स्थापित किये तथा पुन: पब्लिक स्कूल पद्धतिका अमरनाथ विद्या आश्रम स्थापित किया, जिसका संचालन उनके सुयोग्य पुत्र श्रीकैलाशनाथ और राघवनाथ कर रहे हैं।

मथुरामें प्रौढ़ और बेकार रहनेवाली महिलाओंकी स्थितिपर विचारकर उन्होंने धन-साधनका अभाव होते हुएभी सन् १९४५ में महिला-शिल्प-विद्यालयकी स्थापनाकी।

वास्तवमें वे क्रियाशील चिन्तक थे और उनका विचार था कि कार्य अच्छा होनेपर आर्थिक सहायता अपने आप मिलने लगती है। उन्हींके प्रयासोंसे प्रेरणा पाकर नगरमें अन्य शिक्षण-संस्थाओंका विस्तार हुआ।

श्रीद्वारिकानाथ भार्गव व्रज-प्रदेशकी सांस्कृतिक उन्नतिकेलिए विशेष दत्तचित्त थे। उनकी प्रबल उत्कण्ठा थी कि, प्राचीन मथुरा नगरी विगत गौरव प्राप्त कर ले। उन्हींकी प्रेरणा और सहयोग से मथुरामें अखिल भारतीय स्तरका संगीत सम्मेलन हुआ, जिसके वे स्वागताध्यक्ष थे। उन्होंने व्रज-संगीत-कला-केन्द्रकी स्थापनाकी तथा उसके अन्तर्गत स्वामी हरिदास संगीत विद्यालय वर्षोंतक चलाया।

परोपकार श्रीद्वारिकानाथजीका व्रत था। उनकी यह 'बहुजनहिताय' की भावना उनके विविध सेवाकार्योंके रूपमें मुखरित हुई। विद्यार्थी जीवनमें ही देशभक्ति एवं जनसेवा-भाव उनके अन्तरमें अंकुरित हो गया था। इसीसे वे स्व० गोपालकृष्णगोखले एवं अन्य देशभक्त नेताओंके सम्पर्कमें आये। शिक्षाके बाद मथुरा आनेपर उन्होंने 'होमरूल लीग' की स्थापनाकी और संस्थाके अध्यक्ष एवं मंत्री रूपमें वर्षोंतक उसका संचालन करते रहे। सन् १९१३ में वे नगरपालिकाके सदस्य चुने गये। सन् १९१४ में प्रथम महायुद्धके समय

नगरमेंजो अव्यवस्था फैली, उसे रोकनेकेलिए उन्होंने शान्ति-रक्षकदल स्थापित किया और स्वयं रातके एक-एक बजे तक सशस्त्र गश्त लगाते थे। सन् १९१७ में उन्होंने मथुरामें सेवा-समितिकी स्थापनाकी और १५ वर्ष तक उसका संचालन करते रहे। वे कहा करते थे कि, जनताजनार्दनकी सेवा करनाही ईश्वरकी सच्ची उपासना है। जब नगरमें प्लेग, इन्फ्लुएंजा आदिका भीषण प्रकोप हुआ और प्रतिदिन सैकड़ों प्राणी मरे, श्रीभार्गवजीने अपूर्व सक्रिय साहसका परिचय दिया। सन् १९२४ में जब यमुनामें भयंकर बाढ़ आयी तो आपने दो लाख रुपये एकत्र कर बाढ़-पीड़ितोंकी सहायता की।

सन् १९२३ से २५ तक वे नगरपालिकाके अध्यक्ष रहे। इस अवधिमें आपने अनेक उपयोगी कार्य किये। मथुरामें अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा योजना बनायी, स्वदेशी एवं औद्योगिक प्रदर्शनियाँ करायीं, नल-बिजलीकी व्यवस्थाकी तथा डैम्पियरपार्क और गांधीपार्क बनवाए।सार्वजनिक सभाओंकेलिए गाँधीपार्कमें अपने एक मित्र, श्रीलक्ष्मीदासकी स्मृतिमें उनके पिताकी सहायतासे लक्ष्मीदास हाल बनवाया। एक समय जब नगरमें बन्दरोंके आतंकसे जनता दुखी थी, तब आपने लगभग बारह हजार बन्दरोंको पकड़वाकर जङ्गलोंमें छुड़वाया था।

श्रीद्वारिकानाथ भार्गव सार्वजनिक जीवनमें सचाई, निस्वार्थ-भावना और ईमानदारी को महत्व देते थे। आपने अपना जीवन जनताजनार्दनकी सेवामें सर्मापितकर दिया था। न उनमें आत्मविज्ञापन था, न यश-लोलुपता। वे निर्लिप्त भावसे ठोस, रचनात्मक कार्यमें विश्वास रखते थे। उनका जीवन 'परोपकाराय शतां विभूतयः' की उक्तिको पूर्णतया चरितार्थ करता है। जीवनके अन्तिम समय तक वे अपने इसी व्रतको क्रियान्वित करनेमें संलग्न रहे। सन् १९४९ में वे वकालत छोड़कर मथुरा-वृन्दावन मार्गपर, नगरसे बाहर गीतामन्दिरके पीछे एक विश्राम-कुटीर बनाकर शान्तिमय वातावरणमें पत्नीसहित वानप्रस्थका जीवन व्यतीत करने लगे। उनके जीवनका संध्याकाल आध्यात्मिक साधना और सन्यासका उत्कृष्ट उदाहरण था। भगवान्‌के प्रति अटूट भक्तिसे उनका हृदय आप्लावित था। वे गीताके 'शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः संगविर्वाजतः' के सजीव प्रतीक थे। सन् १९५२ में उनके नेत्रोंमें असह्य वेदना थी, ज्योतिहीन होनेके कारण एक आँख निकलवा दी गयी और सन् १९५६ में उनकी जीवनसंगिनीका देहावसान हो गया। किन्तु कभी भी उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया और सहिष्णुताका आदर्श परिचय दिया। वे एक वीतराग भगवत्‌भक्तके समान इस संसारमें जीवन व्यतीत करके २६ नवम्बर, १९६३ को परलोकवासी हो गये। मथुरावासी उन्हें कभी भूल नहीं सकते।

श्रीद्वारिकानाथजी भार्गवके देहावसानके पश्चात् श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघमें जो स्थान रिक्त हुआ, उसपर उनके अनुज श्रीहरिनाथजी भार्गव नियुक्त हुए। वे भी बड़े कर्मठ और लोकप्रिय व्यक्ति थे। व्यापारी वर्गमें तो उनकी विशेष प्रतिष्ठा थी। किन्तु कुशल व्यापारी होनेके साथ-साथ जनता जनार्दनकी सेवामें भी तत्पर रहते थे। यहाँ तक कि, कभी-कभी अपने निजी व्यवसायकी उपेक्षा करके लोकोपकारी कार्योंको प्राथमिकता देते थे। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानकी सेवा उनको बड़ी प्रिय थी। जब वे संघके सदस्य नहीं थे, तबभी उसके कार्योंमें अपना सक्रिय सहयोग देते रहे। परन्तु दुर्भाग्यवश उनका जीवन-कालभी बहुत शीघ्र समाप्त हो गया और वे २४ मई सन् १९६४ को इस संसारसे विदा हो गये।

दोनों भार्गव बन्धुओंकी दिवंगत आत्माओंको हमारा शत-शत नमन-वन्दन!

धर्म, संस्कृति और इतिहासके आधारपर
चमत्कारी '७' अङ्कका गवेषणात्मक चित्र

"मनुष्यके जीवन और सृष्टिके नियमोंसे ७ की संख्याका बड़ा गहरा सम्बन्ध है। प्रत्येक ७ वर्षोंपर प्रत्येक प्राणी, विशेषकर मनुष्यके जीवनमें विशेष-विशेष परिवर्तन होते हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक हक्सले लिखता है, प्रति सात-सात वर्षमें शरीरके उपादानोंमें परिवर्तन हुआ करता है।"

'७' का चमत्कारिक अंक

श्रीजानकीनाथ शर्मा

आजके प्रकृतितत्त्व-वेत्ताओंका कहना है, मनुष्यके जीवन और सृष्टिके नियमोंसे ७ की संख्याका बड़ा गहरा सम्बन्ध है। प्रत्येक सात वर्षोंपर प्रत्येक प्राणी, विशेषकर मनुष्यके जीवनमें विशेष-विशेष परिवर्तन होते हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक हक्सले लिखता है, प्रति सात-सात वर्षमें शरीरके उपादानोंमें परिवर्तन हुआ करता है। शिशुकालका पुराना उपादान सात वर्षमें बदलकर उसमें यौवन कालका नवीन उपादान आने लगता है। यही कारण है, धर्मशास्त्रमें यौवन वेगको मूलमें ही रोकनेकेलिए अष्टम वर्षमें बालकोंकेलिए उपनयन काल और स्त्रियोंकेलिए गौरीदान काल विहित है। (देखिए, भारत महामण्डलसे प्रकाशित स्वामी दयानन्द रचित 'धर्मविज्ञान' ग्रन्थ)।

कहते हैं कि हिटलरको भी इस ७ के सिद्धान्तपर बड़ा विश्वास था। उसने स्वस्तिकको भी चारोंओरसे अंग्रेजी अंक '७'का ही समन्वय समझा था। ७के अङ्कके महत्त्वपर उसे अधिक विश्वास था। कहते हैं, उसने गत महायुद्ध अपने (७×७) ४९ वें वर्षके बाद, ७-७-१९३९ को इन्हीं सब बातोंको सोचकर प्रारम्भ किया था।

अस्तु, जो कुछ भी हो, सनातनधर्ममें भी ७ की कुछ न कुछ विशेषता है। वेदों तथा पिंगलशास्त्रमें प्रधानतया गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, पङ्क्ति, वृहती, उष्णिक और ककुभमें भी ७ ही छन्द होते हैं। व्याकरण शास्त्रमें भी कारकोंकी विभक्तियाँ ही प्रधानतया सर्वस्व कही जाने योग्य हैं, वे सात ही हैं, अष्टमी कोई विभक्ति नहीं होती। 'प्राण' और 'होता' भी मुख्यतया सात हैं

ज्योतिष शास्त्रमें तो ७ ही वार और ७ ही ग्रह हैं, वाराहमिहिरने राहु केतुको ग्रह नहीं माना। ७ ही ग्रह प्रधान हैं। राजनीतिका विद्यार्थी बतला सकता है कि, राजा, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल—ये सात प्रकृतियाँ शुक्रनीतिके अनुसार हैं।

मनुस्मृतिमें भी राजा, अमात्य, पुर, राष्ट्र कोप, दंड और सुहृत्को राज्यकी सात प्रकृति बताया गया है। राजामें यदि वेश्यासंसर्ग, द्यूत, विशेष मृगया, सुरापान, कठोर वाक्य, कठोर दण्ड, और अधिक व्यय—ये सात दोप न हों तो वह उन्नतशील बनता है, अन्यथा बड़े से बड़ा राज्य भी चौपट हो सकता है। इसीलिए नीतिकारोंने राजाको इन दोषोंसे बचनेकेलिए कहा है—

सप्तदोषा सदा राज्ञा हन्तव्या व्यसनोदयाः ।

(विदुरनीति)

रामायणमें भी ७ की प्रधानता देखनेमें आती है। पहले तो उसमें काण्ड सात हैं, फिर रामचन्द्रजीका विवाह (७×२) चौदहवें वर्पके अन्तमें होता है। (४×७)२८ वें वर्पके आरम्भमें वनयात्रा करते हैं। फिर (७×२) १४ वर्पों तक वनमें रहकर घर लौटते हैं। कहते हैं कि, शनिकी साढ़ेसाती भी सातवर्पमें ही पूरी होती है। 'अवध साढ़ साती जन बोली'से भगवान् राम और भगवती सीता-दोनोंकी साढ़ेसातियाँ १४ वर्प तक कष्ट देती रहीं।

कृष्णलीलामें भी ७ बहुत प्रधान है। श्रीकृष्णकी गीतामें सातसौ श्लोक हैं। 'यःसप्तहायनो बाल:' श्लोकमें बताया गया है, श्रीकृष्णने सातवें वर्ष ही गोवर्द्धन धारण आदि लीलाएँकी थीं। उनकी मातायें 'वन्दे शिरसा सप्त देवकी प्रमुखा मुदा' सात ही प्रमुख थीं। फिर 'श्रीमद्भागवतका सप्ताह' तो बड़ा ही प्रसिद्ध है।

गोस्वामी तुलसीदासजीके साथ भी तो ७ का तमाशा देखते ही बनता है। कुछ लोगोंके विचारसे उनकी उत्पत्ति ७ तिथिको हुई, निधन भी सप्तमीको हुआ। मानस वन्दनाके आदिमें श्लोक सात हैं, जो 'देवगिरामुनि बाल पुनि'से प्रसिद्ध हैं। उत्तरकाण्डके अन्तमें तो 'सप्तप्रश्न' रखकर सातका सीधा महत्त्व रखा। बीच-बीचमें 'सप्तावरण', सातस्वर्ग, 'सप्तदीप-भुजबल वश कीन्हे'से७ का अभ्यास करते गए। उनका रामाज्ञा प्रश्न तो 'सप्त-सप्तको' शेपकर राखे सब बिलगान'से ७ सर्गमें और फिर प्रति सर्ग ७ सप्तक तथा प्रतिसप्तकमें सात दोहोंसे युक्त है। 'तुलसी सतसई' भी उनकी एक रचना कही जाती है। अपने यहाँ तो सतसइयोंकी भरमार है और तो और, 'दुर्गासप्तशती' जैसा प्रसिद्ध मन्त्र प्रधान ग्रन्थ भी सातहीसौ श्लोकों का है।

अन्यत्रभी सातका सायुज्य देखते ही बनता है। हमारे यहाँ 'ब्राह्मी माहेश्वरी' आदि सात ही मातायें सर्वत्र पूजी जाती हैं। सातलोक, सातद्वीप, सात समुद्रको कौन नहीं जानता ? समुद्र मंथनके समय (७×२) १४ रत्न निकले, जिनमें ७-७ देवताओं तथा असुरों के परिश्रमका फल होने चाहिए थे। उनमें सात मुँहवाला सूर्यका घोड़ा भी प्रसिद्ध है। 'शुक्ल-यजुर्वेद'के 'सप्तास्यासन्परिधय:'की टीकामें महीधरने ऐसी ही बहुतसी सात-सातकी वस्तुओंका उल्लेख किया है। आकाशमें देखनेपर सात ही प्रधान ग्रह, सप्तर्षिके सात तारे तथा त्रिशंकुवाला तारा भी सात ही तारोंमें प्रतिष्ठित दीखता है। इन्द्रधनुपर तथा अन्यत्र भी रंग सातही होते हैं। अपने यहां सातकरोड़ महामन्त्रोंकी प्रसिद्धि सुनी जाती है—'सप्तकोटि महामन्त्रश्चित्त विभुकारका:।' स्कन्द और पद्म जैसे महापुराणोंमें ७-७ ही खण्ड हैं।

पहाड़ोंमें मुख्य सप्तकुलाचल पर्वत सनातनधर्ममें प्रसिद्ध हैं। अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका, और द्वारका—ये सात मोक्षदायिनी पुरियाँ भी हिन्दुओं को परिज्ञात हैं। इसी प्रकार वाराह आदि सप्तक्षेत्र तथा गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी—ये सात प्रधान नदियाँ भी भारतीयोंको ज्ञात हैं। अणिमा, महिमा आदि योग सिद्धियोंके भी सात ही प्रकार बतलाये गए हैं। मरुदेवताओंकी संख्या भी ७×७ (४९) बतलायी गयी है। अभिजितको मिलाकर नक्षत्रोंकी संख्या भी ७×४ (२८) होती है।

इतना होनेपर भी सातके नियमोंका नियामक कोई भी विधिवाक्य आर्षशास्त्रोंमें नहीं मिलता। यह बात अवश्य है कि, सात वर्षोंके बाद जन साधारणके समयमें कुछ परिवर्तन होता है। कैरा तथा आधुनिक कितने ही हस्तरेखा विशारदोंने इसपर बड़ी माथा-पच्ची की है। अपने यहाँ के भी सामुद्रिक शास्त्री अब इसको महत्त्व देने लगे हैं। पर जबतक इस सातकी गुत्थी पूरी तरह सुलझ नहीं जाती, तबतक इस तरह सातके 'समूह'को एक जगह इकट्ठा कर देनेसे क्या होगा? अच्छा हो, विद्वान् इस गुत्थीको सुलझानेका कुछ प्रयत्न करें।

~~~~~~

श्रीकृष्णका पुरुषोत्तम योग

देखत-देखत जीव एक तन तजिके जावै।
देखत-देखत एक देह तैं दूसरि आवै॥
इस्थित ह्वैके देह गुननि के भोगनि भोगे।
आश्रय इन्द्रिनि करैं विषय सुख साज संयोगे॥
फिरिहू अज्ञानी पुरुष, जानत वाकूँ है नहीं।
ज्ञान रूप जिनिनेत्र हैं, पहिचानत ज्ञानी वही॥

करै नित्य जो जतन योगिजन वेई जानें।
इस्थित हिय में रहै ताहि वेई पहिचानें॥
होवै अन्तःकरन शुद्ध तब जानत योगी।
ताहू पै अभ्यास करै नहिं विषयनि भोगी॥
योगी तो अभ्यास वश, आत्म तत्त्वकूँ जानते।
करै भलें अभ्यास हूँ, अज्ञ न ताहि पिचानते॥

जगमें तीनिहि करैं, प्रकाशित वस्तुनि सगरी।
सूर्य, चन्द्र अरु अगिनि दिखावत वन घर नगरी॥
करैं प्रकाशित जगत सूर्य में ह्वैके इस्थित।
जानो मेरो तेज मोइ तैं होहिं प्रकाशित॥
ऐसे ही जो चन्द्र में, और तेज जो अगिनि में।
अरजुन तू यह जानि लै, तेज हमारो सबनि में॥

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी
~~~~~~

भगवान् और भक्तकी अभिन्नताका
एक वास्तविक चित्र

"प्राचीन समयकी बात जाने दीजिये, विगतसौ-सवासौ वर्ष पूर्वभी व्रजमें ऐसे महात्मा, साधु सन्त और भक्त हुए हैं, जिन्हें या तो भगवद्दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अथवा परोक्षमें भगवान्के द्वारा उनके कार्य-सम्पादन किए गये थे।"

श्रीकृष्ण-भक्त सनेहीराम

श्रीभगवानदत्त चतुर्वेदी

परमपावन पुण्यभूमि व्रजमण्डल साहित्य, संगीत एवं विविध कलाओंका केन्द्र तो है ही, यहाँ भक्तिसुधाका स्रोतभी सर्वत्र प्रवाहित होता रहता है। व्रजभूमिमें ऐसे अनेक भगवद्भक्त उत्पन्न हो चुके हैं, जिन्हें भगवान्के साक्षात्कार तकका अनुभव हुआ था। इस प्रकारके भक्तों और सन्तोंके अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन समयकी बात जाने दीजिये, विगत सौ-सवासौ वर्ष पूर्वभी व्रजमें ऐसे महात्मा, साधु सन्त, और भक्त हुए हैं, जिन्हें या तो भगवद्दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था अथवा परोक्षमें भगवान्के द्वारा उनके कार्य-सम्पादन किये गये थे। इसी श्रेणीके भक्तोंमें ठाकुर सनेहीरामका नाम बड़े आदरके साथ लिया जा सकता है।

कविवर ठाकुर सनेहीराम मथुरा जिलेके, माँट गाँवके निवासी थे। इनके पिता ठा० मुक्खासिंह जायस थे। जायस मुक्खासिंह के पाँच पुत्रोंमें, सनेहीराम सबसे कनिष्ठ थे। इनका जन्म वि० सम्वत् १८०९ फाल्गुनमास तथा मृत्यु संवत् १९०२ माघमास है। इस प्रकार सनेहीजी ९३ वर्ष तक संसारमें रहे। उनकी धर्मपत्नीका नाम, आनन्दीदेवी एवं एक मात्र पुत्रीका नाम केसरदेवी था। सनेहीजी श्रीकृष्णचन्द्रके अनन्य भक्त थे। उनका अधिकांश समय एकान्तवास, भजन-कीर्तन आदिमें ही व्यतीत होता था। वे पढ़े लिखे तो नहीं थे, किन्तु सत्सङ्गके कारण बहुश्रुत थे। अतः उनका ज्ञान बहुत बढ़ाचढ़ा था। उनका नित्य नियम था कि, प्रातःकाल देह शुद्धिसे निवृत्त होकर श्रीवृन्दावन जाते और श्रीबाँकेविहारीजीके दर्शन करके, गाँव लौटकर अपने कृषि-कर्ममें जुट जाते थे। वृन्दावन जानेकेलिये उन्हें श्रीयमुनाजी को तैरकर पार करना पड़ता था। जिन दिनों यमुना चढ़ी होती थी, वे नावके द्वारा पार जाते थे।

नित्यप्रति मन्दिरमें जानेसे मन्दिरके पुजारियोंसे उनका अच्छा परिचय हो गया था। एकदिन श्रीसनेहीरामजी अपने नित्यके समयसे कुछ पहले वृन्दावन पहुँच गये। देखा तो मंदिर

के निकटका बांजार भी अभी नहीं खुला था। सोचने लगे, आजतो बहुत पहले आ गया। कोई बात नहीं, चलो मन्दिरके प्रधान द्वार परही बैठकर प्रतीक्षा की जाय। पर जब मंदिरके मुख्य द्वारपर पहुँचे, तो द्वार खुला पाया। भीतर गये और श्रीविहारीजीके दर्शनकर बहुत ही प्रमुदित हुए। आजके दर्शनमें कुछ विशेष प्रकारके आकर्षणका अनुभव हुआ। पुजारीजीसे भगवान्‌का चरणोदक लेकर चलनेको हुये तो पुजारीजी बोल बैठे—"भक्तजी! आज कुछ प्रसादभी लेते जाओ।" श्रीसनेहीजीने उत्तर दिया, 'महाराज प्रसाद तो अवश्य लेना चाहता हूँ, पर प्रसादको बाँधनेकेलिए कुछ वस्त्र आदि मेरे पास नहीं हैं।' सनेहीजीको यमुनामें तैरकर आना जाना पड़ता था। अतः वे घुटनों तक का लंगोट पहनते थे। पुजारीजीने शीघ्रही अपनी पीली धोतीका सिरा फाड़कर उसमें प्रसाद बाँधकर सनेहीजीको दे दिया।

दूसरे दिन जब सनेहीराम विहारीजीके मन्दिरमें पहुँचे तो पुजारीजीने देखतेही कहा, ठाकुर साहब, कल क्यों नहीं आये? सनेहीजीने विस्मयपूर्वक उत्तर दिया, 'वाह महाराज, कल दर्शनके पश्चात् आपनेही तो अपनी पीली धोती फाड़कर उसमें प्रसादभी बाँधकर दिया था। लीजिये यह अपना कपड़ा।' पुजारीजीको विस्मय हुआ। उन्होंने कपड़ा लेकर विहारीजी के पटुकासे मिलाया, तो वह पटुकेका ही सिरा निकला। पुजारीजीके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। इसी प्रकारकी एक और भी घटना है—एक दिन माँट गाँवके तहसीलदार महोदयने बड़े तड़केही चपरासी भेजकर सनेहीरामको बुलाया और भूमिकर चुकानेकेलिए अन्तिम चेतावनीदी। ठाकुर साहब अधिक निर्धन थे। आर्थिक कठिनाईके कारण कर नहीं चुका पाये थे। जब तहसीलदार उन्हें हवालातमें बन्द करने लगा, तब सनेहीजीने अनुनयविनय करते हुए कहा, 'मेरा नित्यका नियम श्रीविहारीजीका दर्शन करनेका है। अतः कुछ घण्टेकेलिए मुझे छोड़दो। दर्शन करनेके पश्चात् मैं स्वयं ही उपस्थित हो जाऊँगा।' पर तहसीलदारने सनेहीजीकी प्रार्थना अनसुनीकर उन्हें हवालातमें बन्द करके ताला लगाकर ताली अपनी जेब में रखली और कहा—'सनेहीजी, आज मुझेभी वृन्दावन जाना है। वहाँ मैं स्वयंही विहारीजी के मन्दिर जाऊँगा और आपकी ओरसे भी ढोंक दे दूँगा।' तहसीलदारको वृन्दावन जानाही था। जब विहारीजीके मन्दिरमें गया, तो मन्दिरमें दर्शन करते हुए सनेहीरामको देखकर आश्चर्यसे चकित होकर उलटे पैर वृन्दावनसे माँट गाँव पहुँचा। वहाँ भी उसने सनेहीरामको हवालातमें बन्द पाया। श्रीविहारीजीमें सनेहीरामजीकी सच्ची निष्ठा देखकर तहसीलदारने उनका 'कर' स्वयं अपने पाससे जमाकर उन्हें हवालातसे मुक्त कर दिया।

डाक्टर सत्येन्द्रजीनेभी अपनी पुस्तक 'ब्रजलोक साहित्य'में श्रीसनेहीरामके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी कतिपय घटनाओंका उल्लेख किया है। एक बार ब्रजप्रदेशमें अनावृष्टिके कारण अकाल पड़ गया। कुँआ और तालाबोंका जल सूख गया। गायोंको घासभी नहीं मिलती थी। खेती-बारी सूख गईथी। ग्रामवासियोंने अकालके दुखसे पीड़ित होकर सनेहीरामसे कहा—'ठाकुर साहब, आपतो भगवान्‌के बहुत बड़े भक्त हैं। भगवान्‌से प्रार्थना क्यों नहीं करते, जिससे वर्षा हो और हम सबका दुःख दूर हो।' श्रीसनेहीरामजीने एक भजनकी रचनाकी और उसे बड़े प्रेम से गाया। कहते हैं, उनके भजनके प्रभावसे बड़े जोरकी वर्षा हुई। ताल तलैयाँ सब जलपूर्ण हो गईं। इसी प्रकारकी एक घटना और है। जिन दिनों सनेहीजी नावसे यमुना पार करते थे, एकदिन मल्लाह किसी कारणवश नहीं आ सका।

जब सनेहीजी बिहारीजीके दर्शनार्थ वृन्दावन जानेकेलिये यमुनातटपर पहुँचे, तो उन्हें एक नाव खड़ी मिली। सनेहीजी उस पार गये और दर्शन करके पुनः गाँव लौटभी गए। दूसरे दिन जब मल्लाहने कहा, ठाकुरसाहब, कल तो मैं नहीं आ पाया था, आप किस प्रकार वृन्दावन गये, तब सनेहीजीने विस्मयपूर्वक कहा, 'वाह, तू ही तो मुझे पार ले गया था और फिर लाया भी था। फिर क्यों ऐसी बात करता है?' मल्लाहने निवेदन किया, सचमुच, मैं तो कल नहीं आया था। सनेहीराम और मल्लाह, दोनोंको इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ। श्रीसनेहीरामजीके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी औरभी अनेक जनश्रुतियाँ हैं। भगवान् भक्त-वत्सल एवं भक्तके वशमें ही रहते हैं। अतः इन जन श्रुतियों पर किसीको अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है।

सनेहीरामजीने श्रीकृष्ण जन्मसे लेकर कंसवध तककी कथाके आधारपर एक रचना 'सनेहलीला' नामसे की थी, जो आजभी व्रजकी ग्राम्य जनता में घर-घर गाई जाती है। केवल ग्राम्य जनमेंही नहीं, नागरिकजनोंमें भी वह अधिक लोकप्रिय है। अब तक 'सनेहलीला' के विविध प्रेसों द्वारा तीन संस्करण मुद्रित हो चुके हैं। सनेहलीलामें चौदह लीलायें हैं, जो सोलह भागोंमें विभक्त हैं। यद्यपि सनेहलीलामें लीलायें क्रमबद्ध नहीं हैं, तथा ग्राम्य भाषाही विशेष है, तथापि एक भक्त हृदयकी रचना होनेके कारण उसमें सरसता है और इसीसे उसे विशेपख्याति एवं यश प्राप्त है। सनेहलीलाके अतिरिक्त सनेहीरामजीके अनेक भजन हैं, जो लोकगीत गायकोंके कंठसे बार-बार सुननेको मिलते हैं।

नींवके पत्थर

प्रेमसे सृष्टि जन्मी है, प्रेमसे ही वह पोषित है, प्रेमकी ओर ही वह प्रगतिशील है, और अन्ततः प्रेम में ही वह प्रविष्ट हो जाती है। तुम पूछते हो कि, मैं प्रेमको परमात्मा क्यों कहता हूँ? इसलिए ही कहता हूँ, इसलिए ही कहता हूँ।

जीवनमें सबसे बड़ा गुण पूछते हो? तो वह है साहस, क्योंकि, साहसके विना स्वतन्त्रता नहीं, स्वतन्त्रताके विना सत्य नहीं और सत्यके विना सदाचार नहीं। वस्तुतः साहस जीवनके भवनकेलिए वही करता है, जो किसीभी भवनकेलिए नींवके पत्थर करते हैं।

क्या तुमने अच्छे आदमियोंको कभी मरते देखा है या कि, बुरे आदमियोंको कभी जीते? अच्छे आदमी उसी भाँति कभी नहीं मरते, जिस भाँति कि, बुरे आदमी कभी नहीं जीते?

मेरे मित्र, हो सकता है कि, तुम गुलाबके फूल न बन सको, लेकिन इस कारण काँटे बन जाना तो आवश्यक नहीं है? हो सकता है कि, तुम आकाशके चमकते हुए सितारे न बन सकोगे, लेकिन इस कारण क्या सितारोंको ढंक लेनेवाली काली बदली बन जाना जरूरी है? अन्तमें कहना चाहता हूँ एक रहस्यमयकी बात, जो कांटा नहीं बनता, वह फूल बन जाता है और जो बादल नहीं बनता, वह चमकता हुआ सितारा बन जाता है।

यहतो मेरे हाथमें नहीं है कि, मैं कैसे मरूँ? यह चुनाव मेरे लिए नहीं है, लेकिन, मैं कैसे जिऊँ, यह तो निश्चय ही मेरे निर्णय में है। मृत्यु तो है जीवनकी ही पूर्णता, इसलिए जीवन-जीनेकी विधि चुनकर मैं मृत्युके ढंगको भी चुन लेता हूँ। इसलिए ही मृत्यु बन जाती है पूरे जीवनकी सूचक। जीवनमें जो बोया जाता है, मृत्युमें उसके ही फूल तो अपनी पूर्णतामें खिल जाते हैं।

आचार्य रजनीश

शिवरात्रिके पवित्र पर्वके शुभावसरपर
भगवान आशुतोषके चरणों में

"व्यक्ति अपने आपमें देवभी है और दानवभी।उसे अमृतभी मिलताहै और कालकूटभी, किन्तु वह उस कालकूटको पीकर नीलकण्ठ नहीं बन सकता। यही तो अन्तर है अंशमें और समग्रमें।"

शिवकी रूप-कल्पना

श्रीगोविन्दशास्त्री, एम. ए.

सागर मन्थन चल रहा था। दोनोंही पक्ष अथक परिश्रमकर रहे थे, किन्तु अमृत अभी न मिल सका था। अचानक से तीव्र कल्पनातीत, कालकूटकी उत्पत्ति हुई। देव और दानव, दोनों ही इस अतर्कित फलसे त्रस्तहो उठे। अमृत तो दोनोंही पक्षोंको अभीष्ट था किन्तु इस प्रलयंकर हलाहलका क्या उपयोग हो? इस विषके प्रादुर्भावसे पहले ऐसा उग्र विष किसीकी कल्पना तकमें नहीं था। सभी चिन्तामग्न-विषण्ण-से खड़े थे। इस विषका धरतीपर रहनाही एक समस्या थी। ऐसेही किंकर्तव्यविमूढ क्षणमें देवाधिदेवने कहा—मैं पीऊँगा इसे।

यह प्रस्ताव सुनकर सबके चेहरेपर सन्तोषकी छाया झलकी। रुद्रकी अपरिमेयशक्ति से परिचित दोनों ही पक्षोंको राहत मिली। सचमुच रुद्रने उस कालकूटको पी लिया और वह कालकूटभी गलेमें ही अटका रहा। भगवान् नीलकण्ठ हो गये। देवों और दानवोंने रुद्रको शंकर कहा प्रलयंकर। शंकर कहलाने लगे। इनके इस कार्यको देखकर आजभी लोग उन्हें भोले भण्डारी कहते हैं।

व्यासने इस सागर-मन्थनके उपसंहारमें यह अवश्य कहा है कि, ऐसा मन्थन व्यष्टि और समष्टि दोनोंके ही जीवनमें चलता रहता है और यह सत्यभी है। व्यक्ति अपने आपमें देवभी है और दानवभी। उसे अमृतभी मिलता है और कालकूटभी, किन्तु वह उस कालकूटको पीकर नीलकण्ठ नहीं बन सकता। यही तो अन्तर है अंशमें और समग्रमें। ब्रह्माकी स्थिति बहुत कुछ इस युगके 'न्यूट्रान' से मिलती हुई है तो विष्णुकी 'इलैक्ट्रान' से। शंकरका साम्य 'प्रोटोन' से अधिक बैठता है। येही अणु किसी युगमें गुणत्रयके नामसे जाने जाते थे। सांख्य शास्त्रने इन गुणोंकी परिभाषा और रूपकल्पना सूक्ष्म मनोभावोंको आधार बिन्दु मानकरकी है तो यह अणुवाद उनकी भौतिक प्रक्रिया और परिभाषा है। इस सबके बावजूदभी शंकर का शिव और रुद्र रूप उनकीही विशेषता है। लास्य और ताण्डव उनके ही शक्तिमन्त रूपका

प्रतीक हैं। भौतिक विज्ञानने अणुका जनकल्याणकारी और अपरिमित विनाशकारी रूप उपस्थित करके भारतकी इसी सनातन आस्थाका मूर्तिमान रूप प्रकाशित किया है। शक्तिकी सत्ता उनमें अविच्छिन्न रूपसे अनिवार्यतया निहित है। स्थितिभेदसे उनका उपयोग विविध रूपोंमें किया जा सकता है।

पुराणोंमें वर्णित शंकर का रूप आजके वैज्ञानिक सिद्धान्तोंसे कितना मेल खाता है— इस विषयपर विचार करनेसे यह धारणा बलवती होती है कि, जो लोकमें है वही वेद में है। शंकरका फेन स्निग्ध, चन्द्रिका-समुज्ज्वल रूप उनकी अलौकिकताका प्रतीक है, तो उनका वाहन नन्दिकेश्वर व्यावहारिक दृष्टिसे उस ऊबड़-खाबड़ और शीतप्रदेशके उपयुक्त है। ऐसी सर्दीमें नन्दिकेश्वरके अलावा कोईभी पशु जीवित नहीं रह सकता। उनका निवासभी हिमालय है। उस हिमालयमें सामान्यतया जीवन सम्भव नहीं हो सकता किन्तु कालकूटकी तीव्र उष्माके लिये ऐसाही अत्यन्त शीतल स्थान आवश्यक था। फिर उनके आभरणभूत सर्प उस कालकूटके लिए औषधि स्वरूप हैं क्योंकि कालकूट स्थावर विष था उसके लिये जङ्गम विषका प्रयोग एक व्यवहारकी बात है। विषमें गर्मी होती है, फिर कालकूट तो तीव्रतम विष था उसकी असह्य गर्मीकेलिये कैलाशही उपयुक्ततम स्थान, सर्प ही उपयुक्ततम आभूषण और चन्द्रकलाही श्रेष्ठतम धारणीय वस्तु थी। समाधिकेलिये कैलाशसे अधिक उत्तम स्थान इस धरतीपर और हो ही कौन-सा सकता है? विरल वायु-मण्डल, नीरव और नैसर्गिक सौंदर्यका आगार कैलाश, शंकरकी क्रीड़ास्थली और तपःस्थली है। वैसे 'कैलाश और कैलाशवासी दोनोंही शंकरस्वरूप हैं। विश्व में अप्रतिम, पुण्यसलिला भागीरथी इसीके क्रोड में से निकलती है, उत्तरकी तरफसे आनेवाली तूफानी और वर्फीली हवाओंको यही महिमा मण्डित कैलाश शिखर रोकता है। फिर शंकरके रूपमें और स्थानमें शिवत्व कहाँ नहीं है?

काम (कामिनी परक वासना) जीवनकी अनिवार्यता है, किन्तु जब वही काम जीवन का लक्ष्य बन जाता है। तो वह विसर्पी विष बन जाता है। वह विष जीवनके अमृतको निगल कर पश्चात्ताप और परितापका आगार बना देता है। काम सृजनका पुरोगामी बनकर आता है, तो वह स्वागत योग्य है और यदि वह जीवनके शिवको, श्रेयको आवृत करने आता है, तो वह स्पृहणीय नहीं हो सकता। देवताओंकी विपत्तिका संहार करनेकेलिए वे कामको अवकाश दे सकते हैं, किन्तु इच्छाओंकी तृप्तिकेलिए काम उनपर प्रभावी नहीं हो सकता। वे सर्वेश्वर हैं। जब कामने एकबार ऐसीही अनधिकार चेष्टाकी तो उनका वही संहर्तारूप प्रकटहो उठा और काम सदाकेलिये नामशेष हो गया। तीसरा नेत्र उसी क्षणसे अस्तित्वमें आया, किन्तु यह तीसरा नेत्रभी केवल प्रलयंकरका चिह्न नहीं था, शिव स्वरूपका चिह्न था। इस नेत्रके खुलनेपर केवल अशिवका ही विनाश हुआ। कोईभी वस्तु नितान्त शिव या अशिव नहीं होती। शिवभी यदि सीमाका अतिक्रमण करता है तो अशिव हो जाता है। ठीक इसी सीमाका अतिक्रमण किया था मन्मथने और उस अविनयके लिये रुद्रका विवेक जगा था। फिर विवेक विहित विनाश किसी शुभका ही पूर्व चिह्न होता है। उस दिन से नीलकण्ठ स्मरहर कहलाये।

वास्तवमें तो पिनाकी संसारके शुभचिन्तक ही हैं। सृष्टिका समस्त मंगल उनकेही

पास है। वे रुद्र हैं तो अशिवकेलिये, अमंगलकेलिए । आशुतोषकी इच्छा है शिवत्वका प्रसार, अशिवका विनाश। प्रसन्न हो जायें तो सर्वस्व दे डालें और रुष्ट हो जाँय तो सब कुछ नष्ट कर दें। जीवनमें एकवार रहनेकेलिए मकान बनवाया और वहभी प्रसन्न होकर दान कर डाला। नहीं तो, लंकाधिपतिको ऐसी नगरी कहाँसे मिल पाती? भस्मासुरको अपराजेय वर देकर स्वयं विषमतामें फँस जानेवाले आशुतोषकी अपरिग्रहताका उदाहरण और निष्कपटता की कल्पना कहीं और मिलही नहीं सकती।

आख्यानोंमें जहाँ-जहाँ इस अवधूतके रुद्र रूपकी कल्पना मिलती है, वहाँ-वहाँ अशिवका विनाशही अभीष्ट रहा है। दक्षका यज्ञ विध्वंसभी ऐसाही अविनयथा, यज्ञ किया जाय और उसमें शिवकी प्रतिष्ठा न हो! स्पष्ट है वह यज्ञ विनय और कल्याणका प्रतीक नहीं होकर उद्दण्डता और अभिमानका प्रतीकथा, किन्तु शंकर उपेक्षित बने रहे। उनकी यह उपेक्षाभी सीमा जानती है। उपेक्षा अमंगलको प्रश्रय नहीं दे सकती । सतीका आत्मदाह उस उपेक्षाकी सीमाका उल्लंघन था, बस फिर क्या था। सीमाका अतिक्रमण करते ही तो रुद्र जग पड़े। वीरभद्रके रूपमें उन्होंने सारे यज्ञका विनाशही तो कर डाला। यह था उनका प्रभाव और अभीष्ट। वे तटस्थ रह सकते हैं अपने आपसे, संसारसे और व्यवहारसे किन्तु अशिवसे उनका विरोध है, सर्वहारा विरोध। मृत्युन्जयके रूपमें वे सदा जीवनदाता रहे हैं । क्षमा उन जैसे अमोघ वीर्यका ही गुण हो सकती है। सदासे उनकी रुद्र और शंकररूपमें पूजाप्रतिष्ठा की जाती रही है। उनका ताण्डव चलता रहता है। उनकी समाधि भंग होती है। जन मानस जब पीड़ित होकर क्रन्दन करता है, तो वे तांडव करते हैं, प्रलयंकर बनकर नृत्य करते हैं और उनके उस तेजस्रूपमें धरतीके सारे पाप-ताप भस्म हो जाते हैं। विश्वमें उनकी चन्द्रकलाका दिव्य प्रकाश छा जाता है और एक नये युगका सूत्रपात होता है। सतयुग, द्वापर और त्रेता का समापन उनकी ही भंगिमाओंसे सम्पन्न होता है।

कलियुगमें उनकी शिवलिंगके रूपमें उपासना करनेका उपदेश देते हुए समयके पार दृश्वा ऋषियोंने बहुत बड़ी योग्यताका परिचय दिया है। आज वामाचारके आयामसे उस शिवलिंग और जलहरीका कुछ भी अर्थ लगाया जाय, किन्तु यह प्रतीक कल्पना आधुनिकतम भौतिकवादकेलिए भी उपयोगी रही है। हमारा यह ब्रह्माणु बहुत कुछ इसी शिवलिंगके आकारका है। हमारे महर्षि जानते थे कि, इस युगमें उत्पन्न व्यक्तियोंकी क्षमता बहुत सीमित होगी, इसीलिए यह युग तन्त्र युग (तकनीकी युग) से भी एक श्रेणी कम होगा अर्थात् यान्त्रिक युग और यन्त्रकी पद्धतिके अनुमार चित्रोंका (ग्राफोंका) माध्यम प्रचलित होगा और यह पिण्डाकार (लम्वे) रूप इस युग और इससे पूर्ववर्ती युगकेलिए एक सहज परिकल्पना थी, एक सुगम प्रतीक था। सतयुग मन्त्रयुग था, त्रेता और द्वापर तन्त्र युग रहा तथा कलियुग यन्त्र युग है। ये मन्त्र, तन्त्र तथा यन्त्र, युगके व्यवहार और पद्धतियाँ हैं।

व्याकरणके प्रत्याहारोंका इतिहासभी शिवके उस शिवस्वरूपकी ही प्रतिष्ठा करता है। भाषाके आदिम आविष्कारकके रूपमें शंकर वास्तवमें जन-कल्याणकारी आदिदेवही हैं। यदि शंकरका डमरू नहीं बजता तो शब्द ब्रह्मका अवतारही नहीं होता। उस अव्यक्तको व्यक्त करनेकेलिएही अजन्माने डमरू बजाई और आज संस्कृत व्याकरणके प्रत्याहारोंका

पाठक जानता है कि, उसके इन प्रत्याहारोंके विधिवत् उच्चारणमें और डमरूके बजनेसे उत्पन्न शब्दोंमें कितना साम्य है ।

गंगाधर, कैलाशवासी, स्मरहर, डमरूधर और मृत्युंजयके रूपमें वे स्पष्टतः निश्छल कल्याणकारी हैं ।

शिवरात्रि उनकी ही प्रतीक है तथा कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि इन तीन रात्रियोंमें से एक 'महारात्रि' उसी शंकरकी लीलारात्रि है ।

जिज्ञासा

व्योम पर कितने सितारे, जीव कितने हैं धरा पर,
धरा में है भार कितना और आकर्षण कहाँ पर ?
प्राणियोंके प्राण में नवज्योति आती है कहाँ से,
मेघ बनते हैं गगन पर, क्यों बरसते हैं धरापर ?
आदि प्रश्नोंको समझना-बूझना मैं चाहता हूँ ।
गगनकी गहराइयोंमें डूब जाना चाहता हूँ ।।

सौंदर्य में ही प्रेम है या प्रेम ही सौंदर्य होता,
शक्ति में शिव हैं कि शिव में शक्तिका माधुर्य होता ?
ज्ञान में ईश्वर कि ईश्वर ज्ञानका आगार होता,
आत्मा में हम कि हम में 'अहं' ही साकार होता ?
आदि प्रश्नोंकी पहेली बूझ लेना चाहता हूँ ।
क्षितिजकी परछाइयोंको झाँक लेना चाहता हूँ ।।

विरह में है वेदना या मधुरिमाकी पृष्ठभूमि,
गीत में वीणा कि वीणा प्रेरणाका रूप होती ?
प्रीति हृदय में कि काया प्रीति के अंकुर सँजोती,
या आत्मा ही आत्मा में प्यारके हैं बीज बोती ?
आदि प्रश्नोंको किसीसे पूछ लेना चाहता हूँ ।
और आलिंगन धरा का व्योम से मैं चाहता हूँ ।।

लाल यदुवंशीय

कुछ सर्वोपयोगी सरल मन्त्र और उनकी
जप-विधिका सरल विधान

"उन्नतिका मूल मन्त्र मनकी एकाग्रता है। कामादि विषयोंसे पृथक् रहकर जब मन पवित्र अनुष्ठानोंमें लग जाता है, तो आत्मामें एक महान् शक्ति जागृति होती है। स्वयं जगत्कर्त्ता परब्रह्म परमात्माभी आराधनाके वश होकर भक्तके समीप आ जाते हैं।"

मंत्र अनुष्ठान और सिद्धियोंकी प्राप्ति

स्वामी श्रीजयरामदेवजी महाराज

धर्मात्मा मनुष्य ही मानव कहे जाने योग्य हैं, अधर्मयुक्त व्यक्ति दुरात्माके तुल्य कहा जाता है। मनुष्य शरीरमें ही ज्ञानमय क्रियायें करनेकी क्षमता है। पशु-पक्षी आदि योनियोंमें तो जीवको सार्थक वाणी तककी शक्ति नहीं होती। मनुष्य विचारवान् है। सब कुछ कर सकता है। लोकमें उन्नतिके शिखरपर पहुँच सकता है। आत्मोन्नति करना चाहे तो परमात्माकी आराधनासे योगसाधना अथवा मन्त्र जप आदि अनेक अनुष्ठानों द्वारा सिद्धि प्राप्त कर अलौकिक शक्तियाँ भी प्राप्त कर सकता है।

कुकर्मोंसे अथवा व्यवहारमें आसक्त जीवनसे न लोकमें शान्ति मिलती है, न परलोकमें। पवित्र कर्मोंसे और ईश्वरके ध्यान प्रकाशसे ही सदा मानवोंका जीवन उज्वल हुआ है। ईश्वर-आराधनासे स्वतः शुभ कर्मोंमें प्रवृत्ति होने लगती है। विज्ञान भी यह सिद्ध करता है कि, जिस प्रकारका चिंतन किया जाता है, वैसी ही अपनी आकृति बनती है। उन्नतिका मूल मन्त्र मनकी एकाग्रता है। कामादि विषयोंसे पृथक् रह कर जब मन पवित्र अनुष्ठानोंमें लग जाता है तो आत्मामें एक महान् शक्ति जागृत होती है। स्वयं जगतकर्त्ता परब्रह्म परमात्मा भी आराधनाके वशीभूत होकर भक्तके समीप प्रकट होते हैं। अन्यान्य देवी-देवता तो आराधनासे शीघ्र दर्शन देते और प्रसन्न होते हैं। भारतवर्षमें ही सर्व प्रथम इस विद्या का जन्म और विकास हुआ। सृष्टिके आदिकालसे ही यहाँ बड़े-बड़े महर्षि ईश्वर-आराधना द्वारा योग सिद्धियाँ प्राप्त करके विश्वमें पूजित हुए हैं। हमारे देशके महर्षियोंके इस महान् विज्ञानसे सभी देशके लोग प्रभावित थे। योगविद्याके अलौकिक चमत्कारोंके कारण ही विदेशोंके विद्वान् भारतमें शिक्षा प्राप्त करनेकेलिए आते और उसे अपना धर्मगुरु मानते थे।

हम यहाँ कुछ मन्त्रानुष्ठान और उनके प्रभावका वर्णन संक्षेपमें कर रहे हैं, क्योंकि आराधनामें मंत्रयोग अपना सर्वप्रथम स्थान रखता है—

(१) भगवान्‌की निर्गुण, निराकार आराधना योगीजन करते हैं। इस आराधनामें 'सोहं', "अहं ब्रह्मास्मि" आदि मंत्रोंका जप करके अखण्ड ब्रह्मका ध्यान करते हुए योगीजन परब्रह्ममें लीन होते हैं।

(२) सगुण, साकार ब्रह्मके उपासक पूर्ण ब्रह्मके प्रधान दो अवतार-श्रीराम और श्रीकृष्णकी आराधना करके परमपद प्राप्त करते हैं। श्रीनृसिंह, श्रीवामन, श्रीवाराह आदि कई अवतार हुये हैं, किन्तु, वे सभी अवतार अंशावतार हैं। पूर्ण अवतार दो ही माने गये हैं। श्रीराम और श्रीकृष्णमें वैष्णवजन भेद नहीं मानते। जैसे, एक व्यक्तिके दो चित्र हों अथवा दो नाम हों, वैसे ही यह दोनों अवतार भी हैं। दोनों रूपसौन्दर्यसे परिपूर्ण, दयालुता, ऐश्वर्य आदि गुणोंमें असीम हैं। दोनों आराधना करनेपर प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देते हैं और भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण करते तथा पग-पगपर उनकी रक्षा करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीको श्रीरामजीने प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन दिया था। इसी प्रकार जब श्रीमीराजीने श्रीकृष्णकी आराधनाकी तो साक्षात् प्रकट होकर श्रीगिरिधर गोपाल उनके साथ खेले। इस प्रकार श्रीराम और श्रीकृष्ण, दोनों ही अवतार भक्तोंको परमानन्द प्रदान करते हैं। किन्तु, आराधकको उपासनाकेलिए दोनों में से एक रूपको ही चुनना पड़ता है। एक ही मंत्र हो, एक ही रूपका ध्यान हो, एक ही गुण हो और एक ही चरित्रका चिन्तन हो। तब फिर इष्टमें तन्मयता होती है। मन एकाग्र होकर इष्टमें लगे तो इष्ट प्रकट होकर दर्शन देते हैं।

(३) श्रीराम अथवा श्रीकृष्ण मंत्र स्वगुरुदेवसे लेकर मंत्रमें जितने अक्षर हों, उतने लाख मंत्र जपनेपर एक अनुष्ठान होता है। एक अनुष्ठानके पश्चात् इष्ट कृपासे किसी-किसी को बड़े-बड़े चमत्कार दिखाई देने लगते हैं। दिव्य शक्ति अन्तःकरणमें प्रकट होती है। मन्त्र में जितने अक्षर हों, उतने करोड़ जपनेपर इष्टदेवका साक्षात्कार होता है। जैसे, यदि किसी मंत्रमें ६ अक्षर हैं, तो ६ करोड़ जपनेपर पूर्णसिद्धि होती है।

(४) जो लोग अद्वैतवादमें पड़कर 'अहंब्रह्म'की भावनामें आगे बढ़कर भी निराश हो, भगवान्‌की भक्ति चाहते हों, उन्हें यह मंत्र जपना चाहिए—'श्रीकृष्णदासोऽहम्।" इस मंत्रके जपसे भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जाती है। मनका समस्त भ्रम दूर हो जाता है। श्रीवृन्दावन में कई सन्यासी और गृहस्थ, जो इस समय भी विद्यमान हैं और पहिले अद्वैतवादी थे, इसी मंत्रके प्रभावसे भक्तिमार्गमें आये हैं—भगवान्‌के अनन्य उपासक हुए हैं।

(५) यदि किसीको किसी कार्यमें उलझन हो, या क्या करें या न करें, इस प्रकारका भ्रम हो या कोई मर्मकी बात हो तो उसे गीताके निम्नांकित श्लोकका जप करना चाहिये—

"कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्म संमूढ़ चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहितन्मे,
शिष्यस्तेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥"

इस श्लोकमें दिव्य प्रभाव है। १०८ बार अर्थात् केवल १ माला जप करके रात्रिमें सो जाइये। रात्रिमें स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्ण सारी उलझन सुलझा देते हैं। कुछ लोगोंको तो १ ही दिनमें उपदेश मिल जाता है, कुछ को महीनों लग जाते हैं। जबतक आदेश न मिले, जप करते जाना चाहिये।

(६) जो लोग एक आसनसे बैठकर विधिवत् मंत्रका जाप नहीं कर सकते, उनके लिये भी कलियुगमें मंत्र जपनेका विधान है। ऐसे लोग यदि चलते फिरते नामके मंत्रोंका जप करें तो वे भी पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। कबीरदासजी, रैदास आदिको श्रीरामानन्दाचार्यजी ने 'राम' नाम जपका ही उपदेश दिया था। केवल "राम राम" जपनेसे ही उन्हें समस्त सिद्धियां, सर्वज्ञता तथा ईश्वरकी प्राप्ति हो गयी।

(७) 'कलि सन्तरणोपनिषद'में नाम महा मंत्र के द्वारा ही सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होनेका उल्लेख है। कलियुगमें ईश्वर दर्शन और मोक्ष आदि सब कुछ केवल इसी मंत्रसे प्राप्त होता है—

'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्णकृष्ण हरे हरे॥'

प्रत्यक्ष देखा गया है, जिन्होंने इस मंत्रका हर समय जाप किया, उन्हें सब कुछ प्राप्त हो गया।

(८) समर्थ स्वामी रामदासजीके गुरुने उन्हें आज्ञा दी थी, तेरह करोड़ "श्रीराम जय राम जय जय राम" मंत्रका जप करो, तो भगवान्का दर्शन होगा।" समर्थजीने गुरु की आज्ञानुसार १३ करोड़ जप किया और उसके फलानुसार श्रीरामजीने साक्षात् प्रकट होकर दर्शन दिया। समर्थजीने भगवान्से वरदान प्राप्त किया था कि, जो कोई विना विधिके भी इस मंत्रका तेरह करोड़ जाप करेगा, तो वे उसे भी प्रकट होकर दर्शन देंगे।

(९) "श्रीकृष्णशरणं मम" इस मंत्रका जप करनेसे प्रेमभक्ति बढ़ती है और सर्वत्र सदा रक्षा होती है।

(१०) समस्त विघ्नोंसे त्राण पानेकेलिये 'श्रीराम रक्षा स्तोत्रम्' तथा भागवतके 'श्रीनारायण कवच' का नित्य पाठ करना चाहिए।

(११) महान् भय निवारणार्थ विधिपूर्वक आसनपर बैठकर "नृसिंहायनमः" मंत्र को ७० माला प्रतिदिन, ७० दिन तक जपना चाहिए।

(१२) किसी महान् कामनाकी पूर्तिकेलिए या भक्ति, मुक्ति आदिकी इच्छासे सम्पुट लगाकर रामायणका नवाह्न करनेसे सिद्धि होती है। सम्पुट यह है—

"सो तुम जानहु अन्तरयामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी।"

श्रीरामजीका साक्षात्कार प्राप्त करनेकेलिये—

"देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन॥"

सम्पुट लगाकर १०८ बार रामायणका पाठ करें। चाहे नवाह लगातार करें, चाहे तीन दिनमें करें, चाहें एकाह करें। दर्शन होता है।

(१३) श्रीमद्भागवत्के सप्ताह पाठसे सैकड़ों मनुष्योंको पुत्र प्राप्त हुए हैं, धनसम्पत्ति तथा कीर्ति मिली है, गृह बाधाएँ दूर हुई हैं, प्रेतोंसे मुक्ति मिली है और मुकदमोंमें विजय हुई है। भागवत्के १०८ पाठका यज्ञभी होता है। भक्ति और भगवान्को प्राप्त करनेका यह अमोघ मंत्र है।

(१४) श्रीहनुमानजीके अनेक मंत्र हैं। केवल हनुमानचालीसाके पाठसे बहुतोंको सिद्धि प्राप्त हुई है। रामायणके सुन्दरकाण्डका पाठ करनेसे हनुमानजीकी कृपा शीघ्र प्राप्त होती है। हनुमानजीका प्रधान मंत्र है—'हं हनुमतेनमः।' इस मंत्रकी महान् महिमा है। ७० माला प्रतिदिन जपना चाहिए। १०० दिनमें ७ लाख मंत्र होंगे। प्रत्येक कामना पूर्ण होती तथा ज्ञान, भक्ति और वैराग्य प्राप्त होता है। ७ करोड़ मंत्र जपनेसे साक्षात्कार होता है।

(१५) आराधनामें उत्पन्न काम, क्रोध आदि विकारोंको जीतनेकेलिए प्रतिदिन निम्नांकित श्लोक जपना चाहिए।

"नान्यां स्पृहा रघुपतेहृदयेस्मदीये,
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छरघुपुंगव निर्भरांमें
कामादिदोष रहितं कुरुमानसच्च॥"

यहाँ संक्षेपमें कुछ अनुभवी सन्तों द्वारा सिद्ध किये हुए मंत्रोंका वर्णन किया गया है। सैकड़ों साबर मन्त्र तथा अनेक देवताओंके मन्त्र और भी हैं। यदि प्रेमी पाठकोंको यह रुचिकर लगा और उन्होंने जिज्ञासाकी तो आगेके अंकोंमें अन्य उपयोगी मंत्रों पर प्रकाश डालनेका प्रयत्न करूँगा।

प्रायः लोग प्रश्न करते हैं, आजकल मंत्रानुष्ठान सफल नहीं होते, इसके क्या कारण हैं? बात यह है कि, लोग विधिवत् जाप नहीं करते और उन विरोधी तत्वोंसे बचनेकी चेष्टा नहीं करते, जो मंत्र सिद्धिमें बाधक होते हैं। जोब्रह्मचर्यसे रहता है, शुद्ध अन्न खाता है, कुसंगसे बचता है, असत्य नहीं बोलता, उसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। कहा है—

"मुख दग्धं परान्ने च कर दग्धं प्रतिग्रहात्।
मन दग्धं परस्त्रीणां मंत्र सिद्धि कथं भवेत्॥"

मंत्र जपके समय केवल इष्टदेवका ही चिन्तन होना चाहिए, विषयोंका चिन्तन नहीं। राग-द्वेषको मनमें न स्थान दे। किसीको कष्ट पहुँचानेकी इच्छासे जो जप होता है, उससे मंत्रके देवताको भी कष्ट होता है। विशुद्ध अन्तःकरणसे जप करनेसे निश्चय थोड़े समयमें ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। मनको कीट भृंगकी तरह इष्टदेवके ध्यानमें तन्मय करके दिनरात उपासना करनेसे इष्टदेवका सिंहासन हिलता है और उन्हें भक्तके प्रेम वश प्रकट होना ही पड़ता है—

"रहिमन मनहिं लगायके, देखि लेहु किन कोय।
नरको बस करिबो कहा, नारायण बस होय।"

"लोककल्याण और समन्वय ही हिन्दू धर्ममें आराधनाका लक्ष्य है। हिन्दू धर्ममें, जन-जनके द्वारा होती हुई आराधना जन-कल्याण और समन्वय की ही सीढ़ियाँ बनाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि, आराधनाका जितना ही अधिक प्रसार होगा, उतना ही अधिक लोक कल्याण और समन्वयका मार्ग भी प्रशस्त होगा।"

आराधना—लोकमंगलका स्रोत

श्रीचैतन्य

मनुष्य चेतनामय और ज्ञानमय प्राणी है। उसके पास बुद्धि नामक यंत्र है। वह बहुत कुछ सोचनेवाला है, विचार करनेवाला है। उसके कार्य दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकारके कार्य वे हैं, जिनमें उसके आत्मस्वभाव की प्रेरणा होती है। उसके दूसरे प्रकारके कार्योंमें उसकी बुद्धिका योग होता है। यहाँ बुद्धिसे तात्पर्य, उस बुद्धिसे है, जो मनुष्यको 'आत्म-भाव' का अंचल छोड़देनेकेलिए प्रोत्साहित करती है; दूसरे शब्दोंमें जो मनुष्य को 'अहं' के आसनपर बिठाकर, उसे नग्न रूप में 'स्व' वादी बना देती है। मनुष्य जल क्यों पीता है, अथवा उसे 'जल' की खोज क्यों रहती है? जलकेलिए मनुष्य में स्वाभाविक अतृप्ति होती है। 'जल' पीना मनुष्यका स्वाभाविक गुण है। शीतल, सौरभित वायु मनुष्य को क्यों अधिक प्रिय लगती है? शीतल, सौरभित वायुकेलिए मनुष्य क्यों उन्मन रहता है? शीतल, सौरभित वायुको ग्रहण करना मनुष्यका स्वाभाविक गुण है। सौरभ, सौन्दर्य जहाँ भी कहीं होता है, मनुष्य उसकी ओर क्यों आकर्षित हो उठता है? यह आकर्षण भी मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। इसी प्रकार 'आराधना' और 'अर्चना' भी मनुष्यका एक स्वाभाविक गुण है। भगवान् की 'आराधना' की ओर मनुष्य स्वभावतः आकर्षित होता है। कभी कभी किसी के उपदेश से भी, उसकी आराधना की प्रवृति, जो उसके हृदय में सुप्त रहती है, जाग उठती है। कभी-कभी किसी दुःखाघात और वियोग-वेदना सेभी आराधना की प्रवृति जागती हुई दिखाई पड़ती है। आराधनाकी प्रवृतिके जन्म का चाहे जो भी कारण हो, पर यह सत्य है कि, मनुष्यको आराधना प्रिय लगती है, और उसका केवल यही कारण है कि, आराधना मनुष्य का एक स्वाभाविक और श्रेष्ठ गुण है।

मनुष्य चाहे कितना ही महान् और श्रेष्ठ क्योंन बने, पर फिर भी वह 'अपूर्ण' ही रहता है। मृत्यु, दुःख सुख और उत्थान-पतनकी घटनाएँ निरन्तर उसकी 'अपूर्णता' और 'किसी की' पूर्णताके चित्रोंको उसके सामने चित्रित करती रहती हैं। प्रकृति की अजेयतासे

भी मनुष्यकी आँखों के सामने किसी महान् शक्तिसत्ताका चित्र प्रस्तुत होता है। वही महान् सत्ता 'परमेश्वर' है। मनुष्य परमात्माकी शक्तियोंको जब देखता है, तो कभी या तो अभिभूत हो उठता है, या आनन्द-विह्वल हो उठता है। मनुष्य 'आराधना' के द्वारा ही अपनी उस अभिभूतता, और आत्मविह्वलताको प्रकट करता है। अपनी 'आराधना' के द्वारा एक ओर जहाँ वह भगवान् की 'पूर्णता' के समक्ष झुकता है, वहाँ दूसरी ओर भगवान्के समक्ष अपनी अपूर्णता और 'तुच्छता' को भी स्वीकार करता है। आराधनाके रूप में भगवान् की पूर्णता,और अपनी अपूर्णता की यह स्वीकृति संसारके सभी देशोंमें, सभी मनुष्योंमें कुछ न कुछ पाई जाती है। उन मनुष्योंमें भी पाई जाती है, जो अपनेको घोर भौतिकवादी और अनीश्वर वादी कहते हैं। वे भले ही यह कह कर अपने अहं की तृप्ति कर लेते हों, कि हम ईश्वर की आराधना नहीं करते, पर उनके मृत महान् पुरुषोंके स्मृति-स्तूपों पर माल्यार्पणमें,'आराधना' की ही प्रवृति है। यही क्यों, अपने प्रिय स्वजनों और स्वयं अपने चित्रोंके अंकन, और उनके साज-शृंगारमें भी 'आराधना' की ही प्रवृति बोलती है। इसी लिए तो यह कहा जाता है कि, 'आराधना' मनुष्यकी प्रवृतिके मूल में है।

मनुष्य अपने सृष्टि-कालसे ही 'ईश्वर' की आराधना करता चला आ रहा है। मनुष्य, ईश्वर, और आराधनाका सहजात संबंध है। संसार के सभी देशोंके मनुष्यों ने ईश्वर की आराधना के सम्बन्ध में अपनी संहिताएँ और विधियां निश्चित की हैं। आज हम जिन धर्म-ग्रंथों को देखते हैं, वे मनुष्य की युगयुगों की उन्हीं अनुभूत संहिताओं, विधियों, और निष्ठाओं के परिणाम हैं। यदि हम उन सभी धर्मग्रंथों को सामने रख कर 'आराधना' पर विचार करते हैं, तो यह पाते हैं कि 'आराधना' के लिए सबमें निष्ठा है, सबमें विश्वास है। पर यह होते हुए भी उनके स्वरूपोंमें बड़ा अन्तर है। यहाँ हम 'आराधना' के उस अन्तर-वैषम्य पर विचार न करके, केवल यही देखेंगे कि हिन्दू धर्ममें 'आराधना' का स्वरूप क्या है, और इसके साथ ही उसका लक्ष्य क्या है ?

हिन्दू धर्म बड़ा उदार और सहिष्णु है। हिन्दू धर्ममें जहाँ अन्य कई विशिष्टताएँ हैं, वहाँ दो विशिष्टताएँ मुख्य हैं। एक तो यह कि, हिन्दू धर्म बड़ा उदार है, और दूसरा यह कि, हिन्दू धर्म सबसे अधिक आध्यात्मिक है। हिन्दू धर्म का संपूर्ण दर्शन इन विशिष्टताओं का ही संदेश देता हुआ चलता है। उसके संपूर्ण व्यापारों और कार्य-कलापों तथा विधि-विधानों में भी इन्हीं विशिष्टताओं का समावेश है। हिन्दू धर्ममें 'आराधना' उसके इन्हीं गुणोंपर प्रतिष्ठित हुई है। ज्ञानी, अज्ञानी, योगी-यती, संन्यासी-गृहस्थ-सभी आराधना के क्षेत्रमें, हिन्दू धर्म की इन्हीं विशिष्टताओंका अंचल पकड़ कर चलते हुए दिखाई पड़ते हैं। आइए देखें, यह किस रूप में और किस प्रकार होता है।

पहले हम उदारता को लेते हैं, उसके पश्चात् आध्यात्मिकतापर विचार करेंगे। अन्यान्य धर्मोंकी तरह हिन्दू धर्म में ईश्वराराधना केलिए न तो कोई एक निश्चित् ग्रंथ है, और न कोई एक निश्चित् विधान है। जहाँ तक 'ग्रंथ' का प्रश्न है, अनेक ग्रंथ हैं। यद्यपि सभी ग्रंथों में 'आराधना' के लिए निर्देश है, पर यह तो सत्य ही है कि ग्रंथ बहुतसे हैं। जिस की जिस ग्रंथ में रुचि या श्रद्धा हो, वह आराधनाकेलिए उस ग्रंथ को अपनी आचार-संहिता बना सकता है। 'आराधना' के क्षेत्रमें यह एक ऐसी स्वतन्त्रता है, जिससे आराधक की

आत्माको विकसित होने का स्वर्ण सुयोग प्राप्त होता है। आराधनाकी सफलता आत्मा के विकासपर ही निर्भर करती है। हिन्दू धर्ममें आराधक की आत्मा और उसके रुचि-स्वातंत्र्य पर पूर्ण रूपसे ध्यान रखा गया है। 'आराधना'के विधि-विधानों में, मानवके रुचि-वैचित्र्य और संस्कार-वैषम्यको भी अधिक महत्व दिया गया है। हिन्दू धर्म में, सभी साधकोंको इस बात की स्वतन्त्रता है कि, वे अपनी रुचि और संस्कारके अनुसार, चाहे जिस किसी ग्रंथको अपनी आराधनाका आचार-ग्रंथ बनायें। समाज और समष्टिकेलिए, हिन्दू धर्म की यह उदारता अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलती है। हिन्दू धर्मकी इस उदारता को दृष्टिमें रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि, हिन्दू धर्मकी आराधनाका लक्ष्य लोक और समष्टिका कल्याण है।

ग्रंथ की ही भाँति ही उपास्य देवता भी हिन्दू धर्म में बहुत हैं। हिन्दू धर्म में जहाँ 'एकेश्वर' वाद का महत्व है, वहाँ 'बहुदेव' वाद की भी प्रशंसा है। हिन्दू धर्म में कितने ही देवी-देवता हैं, जिनकी आराधना के सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी प्रशस्तियां मिलती हैं। इन संम्पूर्ण देवी-देवताओं के अपने पृथक्-पृथक् गुण हैं, अपनी पृथक्-पृथक् विशिष्टतायें हैं। गुणके साथ ही साथ उनके आकार, वाहनों, और पूजा-विधानों में भी वैपरीत्य है। हिन्दू धर्म में साधक को इस बात की स्वतन्त्रता है कि, वह अपनी रुचि, और संस्कारके अनुसार चाहे जिस देवता का आराध्यरूप में वरण करें। क्योंकि सभी देवता और देवियाँ मंगलके ही प्रतीक हैं। मंगल के प्रतीक होनेके साथ ही साथ सबमें अलौकिक शक्तियों का भी समावेश है। यदि इन सभी देवताओं और देवियों के गुणों और उनकी विशिष्टताओं की समीक्षा की जाय, तो यही कहना पड़ेगा कि, वे जगन्नियंता ईश्वर के ही प्रतिरूप हैं। हिन्दू धर्म की इस बहुदेव कल्पनामें भी उसकी उदारता का ही योग है। समष्टि और जन कल्याण को दृष्टिमें रख करके ही हिन्दू धर्म में बहुदेववादकी स्थापनाके द्वारा चेष्टा यह की गई है कि, मनुष्य मात्र को 'आराधना' करने का स्वर्णसुयोग प्राप्त हो सके। इस रूप में हम यह भी कह सकते हैं कि, हिन्दू धर्ममें 'आराधना' के द्वारा समष्टिके आत्मविकास और कल्याणको अधिक ऊर्ध्वगाभी बनाया जाता है।

अब आइए, हिन्दू धर्मकी आराधनामें उसकी आध्यात्मिकतापर दृष्टि डालें। हिन्दू धर्म पूर्ण अध्यात्मवादी है। हिन्दू धर्मका संपूर्ण दर्शन आध्यात्मिक भावों से ओतप्रोत है। हिन्दू धर्म के संपूर्ण आचार-विचारों, विधि-विधानों, और संहिताओं में अध्यात्मका ही संदेश मिलता है। अतः हिन्दू धर्म में 'आराधना' भी इसी दृष्टिकोण से की जाती है। आराधनामें मुख्य रूप से तीन वस्तुएँ होती हैं-आराधक, पूजा की सामग्री, और आराध्यकी मूर्ति। हिन्दू धर्मकी आराधना में, इन तीनों वस्तुओंका बाहर और भीतरसे एकीकरण होता है। देखनेमें यह एकीकरण साधारण सा ज्ञात होता है, पर इसके भीतर जो आध्यात्मिक रहस्य छिपा है, वह महान् है। देखना है कि, आराधक, जो अपने आराध्यके सामने बैठा हुआ है, कौन है? वह पंचतत्वों का बना हुआ एक सजीव पुतला है। क्षिति, जल, पावक, गगन, और समीरके द्वारा बने हुए शरीर रूपी पिंजड़ेमें वह जीव बन्द है, जो आराधकके रूपमें अपनी पूजा-सामग्रियोंको लेकर, आराध्यमूर्तिके समक्ष बैठा हुआ है। उसके आराध्यदेवकी मूर्तिके गठनमें

भी पंचतत्वों का ही योग है, पर उसका ध्यान उस ज्योतिकी ओर है, जो पंचतत्वोंमें समाविष्ट है। इस रूपमें हम यह कह सकते हैं कि, हिन्दू धर्ममें आराधना नश्वरताका, अविनश्वरताको एक महान् समर्पण है, प्रार्थनाभरा एक अद्‍भुत् निवेदन है। पंचतत्वों के शरीर रूपी पिंजड़ेमें बन्द जीवआराधक, अपने सम्पूर्ण अभावों, अपनी सम्पूर्ण विकलताओं, और सम्पूर्ण निष्ठाओं को उस ज्योतिको, उस परम शक्तिको समर्पितकर देता है, जो सामने की 'मूर्ति' या प्रतिमा में प्रतिष्ठित है। हिन्दू धर्म की इस आराधना में लोकका परलोकके साथ, और जीवन, प्रकृतिका 'विराट'के साथ समन्वय भी हो जाता है।

'आराधक' की पूजा-सामग्रियोंमें भी 'निवेदन' और 'समन्वय'के भावोंका ही समावेश होता है। पूजा-सामग्रियों में चन्दन, पुष्प, धूप, आरती, और शब्द का मुख्यरूप से समावेश होता है। देखना है कि, चन्दन, धूप, आरती, और पुष्प आदि किसके प्रतीक, और गुण हैं? चंदन, पुष्प और धूप गन्धमय पदार्थ हैं। अतः ये उस तत्वके प्रतीक हैं, जिसे हम पृथ्वी तत्व कहते हैं। चन्दन और धूपमें जल तथा अग्निका भी योग होता है। अतः इस रूपमें पूजा की सामग्रियों में 'जल' तथा अग्नितत्वका भी समावेश हो जाता है। अब शेष रह गए वे तत्व, जिन्हें वायु और आकाश कहते हैं। इनकी पूर्ति 'स्पर्श' और 'शब्द' के द्वारा होती है। आराध्य देवता का चरण स्पर्श, और घंटे तथा घन्टी का शब्द 'वायु' और 'आकाश' तत्वको उपस्थित कर देता है; क्योंकि 'वायु' का गुण स्पर्श और 'आकाश' का गुण शब्द है। आरती ज्योति तथा ज्ञानका प्रतीक है। इस प्रकार पूजाकी सामग्रियोंके द्वारा भी नश्वर का अविनश्वर को, अपूर्ण का 'पूर्ण' को ज्ञानमय समर्पण होता है। यह भी हम कह सकते हैं। कि, यहाँ भी लोक का परलोकमें, और जीवन तथा प्रकृतिका विराटमें ज्ञानमय समन्वय होता है।

लोककल्याण और समन्वय ही हिन्दू धर्ममें 'आराधना'का लक्ष्य है। हिन्दू धर्ममें जन-जन के द्वारा होती हुई आराधना जनकल्याण और समन्वय की ही सीढ़ियाँ बनाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि, 'आराधना' का जितना ही अधिक प्रसार होगा, उतना ही अधिक लोककल्याण और समन्वय का मार्ग भी प्रशस्त होगा। हिन्दू धर्मके आचार्यों और विद्वानोंने, इसी मर्म को दृष्टिमें रखकर, देवाराधनापर विशेष बल दिया है। काश, आजके समाज-वेत्ता भी इस मर्मको समझ पाते!

भीखा की फरियाद

देखो प्रभु, मन कर अजगूता।
राम को नाम सुधा सम छोड़त विषयारस ले सूता॥
जैसे प्रीति किसान खेतसों दारा धन औ पूता।
ऐसी गति जो प्रभु पद लावै सोई परम अवधूता॥
सोई जोग जोगेसुर कहिये जा हिये हरि हरि हूता।
भीखा नीच ऊँच पद चाहत, मिलै कवन कर तूता॥

भीखासाहब

सीमातीतके चरणोंमें प्रेम, श्रद्धा,
और भक्तिका सीमातीत निवेदन

"जाति पाँति और धर्मसे कोई भी हो, सबके चित्तमें श्रीकृष्ण का सौंदर्य उतर जाता है। सबके मनको उनका रूप लावण्य हर लेता है। श्रीकृष्ण भगवान् अपना बनाते हुए यह नहीं देखते कि, वे जिसे अपना बना रहे हैं, वह कौन है? वे देखते हैं केवल प्रेम-विशुद्ध प्रेम।"

श्रीकृष्णके चरणोंमें परधर्मावलम्बियों की भावाञ्जलि

श्रीकेदारनाथ प्रभाकर

"इन मुसलमान हरिजनन पर कोटि हिन्दू वारिये" लिखकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने श्रीकृष्ण-भक्त मुसलमानोंका जो अभिनन्दन किया है, वह स्तुत्य ही है। यह तो सत्यही है कि, जबसे मुसलमानीशासनका प्रवेश भारतमें हुआ, तभी से उसके द्वारा हिन्दू-संस्कृतिकी जड़ों को नष्ट करनेके प्रयत्न बराबर होते रहे, पर इसके साथ-साथ यहभी सत्य ही है कि, बहुत से मुसलमानोंने रामकृष्ण के गुण-गीत भी गाए। केवल गीतही नहीं गाए, वरन् प्रेममें विभोर होकर उन्होंने उनकी अभिनन्दनाभी की। यद्यपि इस अभिनन्दनाके कारण वे मुसलमान मौलवियों, और यवन नेताओंके द्वारा बार-बार अपमानितभी किए गए पर फिरभी वे निर्भयता-पूर्वक श्रीराम-कृष्णके चरणों पर अपनी श्रद्धाके सुमन अर्पित करते रहे, करते रहे!!

सुप्रसिद्ध भक्त श्रीरसखानका नाम इतिहासमें सदा अमर रहेगा। रसखानका सम्बन्ध बादशाही वंशसे था, वे दिल्लीके एक समृद्धिशाली पठान थे। उनका जन्म लगभग १६४० वि० में हुआ था। एकबार रसखान भागवतकी कथामें सम्मिलित हुए थे। व्यास-गद्दीके समीप श्यामसुन्दरका चित्र था। 'रसखान' की दृष्टि जब चित्र पर पड़ी, तो श्यामसुन्दरका रूप-लावण्य रसखानके नेत्रोंमें उतर गया। रसखान ने प्रेममें विह्वल होकर, मृदुवाणीमें, व्यासजी से श्यामसुन्दरका पता पूछा। यह जानने पर कि, उनका धाम व्रज है, रसखान लौकिक वैभवों और प्रेमको छोड़कर व्रजके लिए चल पड़े।

'रसखान' मार्गमें बार-बार उस लौकिक प्रेमको सोचते जा रहे थे, जो उन्हें दिन-रात उन्मत्त बनाए रहता था। 'रसखान' उसके साथहीसाथ यह भी सोचते जा रहे थे कि, यदि वैसाही प्रेम उनका श्यामसुन्दरमें हो जाय, तो उनका जीवन धन्य बन जाय—वे भवसागरसे पार उतर जायें। 'रसखान' व्रज पहुंचते-पहुंचते, सचमुच प्रेममें उन्मत्त से हो गए और अपनी सुधि-बुधि खो बैठे। उनकी आँखोंके सामनेसे संसारका चित्र हट गया-अब चारों ओर उन्हें

कृष्णही कृष्ण दिखाई देने लगे। वे वृन्दावनमें रम गए। वृन्दावनके जड़-चेतनमें उन्हें अद्‌भुत अनुभूति प्राप्त हुई। वे प्रेममें गद्‌गद् होकर गा उठे—

"या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुरको तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवों निधिको सुख नन्दकी गाइ चराइ बिसारौं॥
'रसखान' सदा इन आँखिन सौं व्रजके वन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौंतके धाम करीलकी कुंजनि ऊपर वारौं॥

'रसखान' का जीवन धन्य हो उठा। व्रजकी धरतीके कण-कण में 'रसखान' का प्रेम भर गया। 'रसखान' श्रीगोवर्द्धनजीपर, श्रीनाथजीके दर्शनकेलिए उनकी ड्योढ़ीपर उपस्थित हुए। किन्तु जब मन्दिरके भीतर प्रवेश करने लगे, तो द्वारपालने, विधर्मी होनेके कारण उन्हें मन्दिरसे बाहर निकाल दिया। भक्तका अपमान ! श्रीनाथजीके नेत्र आरक्त हो उठे। 'रसखान' ने भी खाना-पीना छोड़ दिया। वे प्रेम में अधीर होकर गा उठे—

'लाड़िलो छैल वही तो अहीरको पीर हमारे हियेकी हरैगो।'

भगवान् श्रीनाथने सचमुच 'रसखान' के हृदयकी 'पीर' दूर करदी। भगवान् ने 'रसख़ान' को दर्शन देकर कृतकृत्य कर दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने, रसखानको गोविन्द कुण्डमें स्नान कराकर, अपने संप्रदायमें दीक्षित कर लिया। 'रसखान' ४५ वर्षकी अवस्था तक व्रजकी धरतीपर, घूम-घूमकर अपने प्रेम और भक्तिकी वीणा बजाते रहे। प्रेमकी प्रतिमूर्ति श्रीराधारमण ने, रसखानकी जीवन-संध्यापर उन्हें अपना दर्शन देकर अमर बना दिया। कहा जाता है कि, 'रसखान' ने भगवान्से बस एक ही कामना की और वह कामना इस प्रकार है—

'मानुष हौं तो वही 'रसखान' बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरौ चरौं नित नन्दकी धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरिको जो धर्‌यौ कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरों करौं नित कालिन्दी कूल कदम्बकी डारन॥

यवन भक्त श्रीहरिदासका नामभी श्रीकृष्णके भक्तोंमें सदा स्मरणीय रहेगा। श्रीहरिदास बङ्गालके यशोहर जिलान्तर्गत 'बूडन' नामक गाँवमें एक गरीब मुसलमानके घर पैदा हुए थे। पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण बाल्यावस्थामें ही उनका भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनुराग हो गया। वे श्रीकृष्ण भगवान्के परम भक्त बन गए। कहा जाता है कि, श्रीहरिदासजी प्रतिदिन तीन लक्ष हरिनामका जाप उच्चस्वर से किया करते थे। शरीरके भरण-पोषणकेलिए वे गाँव में जाकर भिक्षा माँग लाते थे।

एकबार 'वन ग्राम' निवासी एक दुष्ट-हृदय जमींदारने श्रीहरिदासजीके साधना-पूर्ण पवित्र जीवनको नष्ट कर देनेका संकल्प किया। उसने तीन रात लगातार, एक वेश्याको धन का प्रलोभन देकर श्रीहरिदासजीकी कुटियामें भेजा। पर श्रीहरिदासजी अपने नाम-जपमें इस प्रकार विभोर रहते थे कि, उन्हें वेश्यासे बात करनेका समय ही न मिला। अन्तमें उस

वेश्याके हृदयपर श्रीकृष्ण-नामका ऐसा प्रभाव पड़ा कि, वह भी अपना सर्वस्व त्यागकर श्रीकृष्णकी अनन्य पुजारिणी बन गई।

उन दिनों यवनोंका राज्य था। हिन्दू अपने धर्मके अनुसार आचरण करनेमें प्रायः अपनेको असमर्थ पाते थे। 'गोराईकाजी' श्रीहरिदासजीपर कुपित हो उठा। उसने मुलुकपति के न्यायालयमें श्रीहरिदासजीके विरुद्ध आवेदन दिया कि, हरिदासजीको दण्डित किया जाना चाहिए। क्योंकि वह काफिर हो गया है, और श्रीकृष्णकी आराधना करता है। कहा जाता है कि, न्यायाधीश ने काजीके आवेदनकी उपेक्षाकी। उसने दण्ड देनेके स्थानपर, हरिदासजीका सम्मान किया। इससे काजीका कोप औरभी अधिक भड़क उठा। उसने इस्लाम धर्मके अनुसार, स्वयं हरिदासजीकेलिए दण्डाज्ञा जारीकी। हरिदासजीने उसकी दण्डाज्ञाका उत्तर इस प्रकार दिया था—

खण्ड खण्ड करे देह यदि जाय प्रान।
तबू आमि बदने ना छाड़िब हरिनाम॥

श्रीहरिदासजीको सरे बाजार कोड़ोंसे पीटा गया, पर वे कोड़ोंकी चोट सहते हुए श्रीकृष्णके नाम-स्मरणमें ही मग्न रहे। जब वे मूर्च्छित हो गए, तब सिपाहियों ने मृत समझकर, उन्हें गंगाजीमें बहा दिया। गंगाजीके शीतल प्रवाह में, पुनः चैतन्य हो गए और किनारेपर आ लगे। इस अलौकिक घटनाका काजीके हृदयपरभी प्रभाव पड़ा। उसने हरिदासजीके सामने उपस्थित होकर क्षमा-याचनाकी। अन्तमें श्रीहरिदासजीका श्रीचैतन्य-महाप्रभुसे संपर्क हुआ और उन्होंने उन्हींके चरणोंकी छायामें अपना जीवन व्यतीतकर दिया।

भारतके बाहरभी श्रीकृष्ण भगवान्‌के कुछ यवनभक्त हुए हैं, जिनमें श्रीकृष्ण पुजारिणी 'हसीना' और 'हमीदा' का नाम उल्लेखनीय है। 'हसीना' सुदूर, अरब देशके 'खस' नामक एक संभ्रान्त कुटुम्बकी सुशील एवं सुन्दरी युवती स्त्री थी। 'हमीदा' उसकी परमप्रिय सहचरी थी। एक बार एक भारतीय संतके मुख से, जो अरब गए थे, दोनोंको व्रज और श्रीकृष्ण भगवान्‌के सौंदर्य, माधुर्य और अलौकिकताका रहस्य सुननेको मिला। बस, फिर क्या? दोनोंके मनमें प्रेम अंकुरित हो उठा, और दोनों अपने भाई अब्दुल्लाके साथ, एक काफिलेके साथ भारतकी यात्राकेलिए चल पड़ीं। मार्गमें 'बद्दुओं'ने काफिलेपर आक्रमण किया। दोनों युवतियाँ 'बद्दुओंके चंगुलमें फँस गईं। पर किसी प्रकार वे उनके चंगुलसे निकल कर, उस देशके खलीफाके पास जा पहुँची। खलीफा और उसकी बेगम ने दोनोंको बहुत समझाया कि, वे अरब लौट जायें, पर वे श्रीकृष्ण भगवान्‌के प्रेममें इस प्रकार तन्मय हो उठीं थीं कि, उन्होंने भारतकी यात्राकेलिएही आग्रह किया। आखिर, खलीफाने उनके साथ कुछ सिपाही कर दिए। वे दोनों सिपाहियोंके साथ चल पड़ीं और मथुरा पहुँचीं।

मथुरासे दोनों वृन्दावन गईं। वृन्दावनमें, एक मन्दिरमें उन्होंने अपने प्रियतम और आराध्य श्रीकृष्ण भगवान्‌के दर्शनकेलिये प्रयत्न किए, किन्तु पुजारियोंने उन्हें दर्शन न करने दिया। वे दुःखी हुईं, और भारतीय सन्तके द्वारा, श्रीकृष्ण भगवान्‌के सम्बन्धमें सुनी हुई बातोंको याद करती हुई यमुना-तटपर पहुँचीं और बैठकर श्रीकृष्ण भगवान्‌के सम्बन्धमें सोच-विचार करने लगीं। इस प्रकार अर्द्धरात्रि व्यतीत हो गई। सहसा

वे यह देखकर चमत्कृत हो उठीं कि, यमुनाके प्रवाहमें, एक तरणी चली आ रही है, जिसमें राधा सहित स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं। तरणी किनारे लगी। भगवान्ने अपनी दोनों दासियोंको दर्शन देकर, उन्हें आवागमनसे मुक्त कर दिया और अपने निकुन्ज-विहारमें सम्मिलित कर लिया।

सुप्रसिद्ध कवियित्री 'ताज' का नामभी, मीराजीके समानही युग-युगोंतक स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेगा। श्रीकृष्णके प्रेममें विभोर होकर, ताज इस्लामको छोड़कर, हिन्दू धर्मको ग्रहण करनेके लियेभी व्याकुल हो उठी थी। उसकी व्याकुलताका चित्र उसकीही पंक्तियोंमें देखिये—

"सुनो दिल जानि मेरे दिलको कहानी तुम,
दस्तही बिकानी बदनामीभी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं, नमाज हूँ भुलानी, तजे,
कलमा कुरान, सारे गुनन गहूँगी मैं।
स्यामला सलौना सिरताज सिर कुल्लि दिये,
तेरे नेह दागमें निदाग हो दहूँगी मैं।
नन्दके कुमार कुरबान ताँड़ी सूरत पै,
ताँडे नाल प्यारे हिन्दुआनी ह्वै रहूँगी मैं।"

उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर, 'नजीर' अकबराबादी भी भगवान्श्रीकृष्णके परम भक्तोंमें थे। व्रजभूमिकी छवि और श्रीकृष्ण भगवान्की लीलाओंके उनके वर्णनमें उनकी भक्ति साकार हो उठी है। देखिये—

"यह लीला है उस नन्द ललन मनमोहन जसमत छैयाकी।
रख ध्यान सुनो, दण्डवत् करो, जय बोलो कृष्ण कन्हैया की"

भगवान् श्रीकृष्णकी बाल छविका भी चित्रण उनके द्वारा इस प्रकार हुआ है—

"ऐसा था बाँसुरीके बजैयाका बालपन,
क्या क्या कहूँ मैं कृष्न कन्हैया का बालपन।"

कवियित्री कुमारी 'रैहाना' ने भी श्रीकृष्ण भगवान्की भक्ति में 'गीत' लिखकर, पूर्व से चली आती हुई परम्पराका ही पालन किया है—

मोरे मनको……बसो घनश्याम हरि,
मोरी नैनां तुमको तरस रहीं।
तुम्हारे चरनकी मैं खाक मुरारी, प्रेम पवन पर हरि अरि आऊँ।
हलके से हलकी, भारीसे भारी, आप नमूँ अरु तोहे नमाऊँ॥

अब्दुलरहीम खानखाना श्रीकृष्ण भगवान्के अनन्य भक्त थे। उनके भक्ति सम्बन्धी दोहोंमें आजभी उनकी श्रीकृष्ण भक्ति और प्रेम साकार दिखाई पड़ता है। वर्तमान कालमें भी कई मुसलमान श्रीकृष्ण-भक्तोंने यश अर्जित किया है। ख्वाजादिल मुहम्मद 'दिल' ने श्रीमद्भागवत्गीताका उर्दू में अनुवाद करके अपने हृदयकी भक्तिका ही परिचय दिया है।

बरेली में, एक श्रीकृष्ण भक्त मुसलमान सज्जनने, कई लाख रुपये व्यय करके एक मन्दिर का निर्माण कराकर, अपनी भक्ति और प्रेमको अमर बना दिया है। उर्दू के एक शायर की भक्ति ने, निम्नांकित पंक्तियोंमें, सबकी भक्तिकोपीछे छोड़ दिया है—

लामके गानिन्द हैं केस मेरे मनमोहन स्यामके।

"लाम शब्दकी तरह अर्थात् आगे से मुड़ी हुई करछीकी भाँति मेरे मनमोहन घनश्यामकी अलकें हैं। वे लोग, जो उन कुण्डलोंको देखकर मोहित नहीं होते, काफिर हैं।"

केवल मुसलमानोंमें ही नहीं, कई अंगरेजों और अमेरिकनोंने भी श्रीकृष्णकी आराधना मन-प्राणसे की है। इस प्रकारके विदेशी श्रीकृष्णभक्तोंमें प्रोफेसर रोनाल्ड निक्सनका नाम स्मरणीय रहेगा। उन्होंने श्रीवृन्दावनमें जब राधावल्लभजीके दर्शन किए, तो बस एक दृष्टिमें उनके अपने हो गए। इस प्रकार अपने हो गए कि, उनकी साधु वेश भूषाको देख कर, देखनेवालोंको भी उनकी महान् भक्तिपर विस्मय होता था।

भगवान् श्रीकृष्णका प्रेम और भक्तिही ऐसी अपूर्व है! जातिपाँति और धर्मसे कोई भी हो, सबके चित्तमें श्रीकृष्णका सौन्दर्य उतर जाता है—सबके मनको उनका रूप लावण्य हर लेता है। श्रीकृष्ण भगवान् अपना बनाते हुए यह नहीं देखते, कि वे जिसे अपना बना रहे हैं, वह कौन है? वे देखते हैं, केवल प्रेम, विशुद्ध प्रेम! जहाँ भी प्रेम होता है, वे समस्त प्रतिबन्धोंको तोड़कर उसे ग्रहण करते हैं। कबीरने ठीकही लिखा है—

"हरिको भजैसो हरिका होई।"

प्रतिध्वनि

हे मन, सुन्दर राज-मार्ग रहते हुए तुम क्यों गलियों में घूमते हो? मुक्तिकेलिए भक्ति-मार्ग सुलभ है, कुमार्ग में पड़कर क्यों नष्ट होते हो?

हे मन, सुख किसमें है—धन कमानेमें या रामकी सेवा करनेमें? रामचन्द्रके सेवकों—भक्तोंका भला राजाओंकी सभामें क्या काम है?

राम, आप कालहरण क्यों कर रहे हैं? सीताराम! यह कालयापन कैसा है? हे सुगुणजाल! करुणामय, प्रभो, जिस प्रकार दिनभर घूमधामकर पक्षी संध्याको वृक्षकी खोज करता है, उसी प्रकार जन्म लेतेही आपके चरण पकड़नेवाले मुझ दासको उबारनेमें कालहरण क्यों करते हैं? दिन-प्रतिदिन दुनियामें भ्रमणकर मैंने आपके चरणमें शरण ली है, तन-मन-धन आपको अर्पित है। आप क्यों कालहरण कर रहे हैं?

रे मन, नाद सुधारसही पृथ्वीपर नराकृति ले बैठा है। यह निगमागम तथा पुराण और शास्त्रका आधार है।······अपूर्वकोदण्डधारी नादका भजन बड़े भाग्यका विषय है··· इसमें शंकरजी मग्न रहते हैं।

हे भगवान्, मुझे ज्ञान दीजिये। यही उपयुक्त समय है। मुझसे इस संसारमें नहीं रहा जाता है। मुझे अपने सन्निधानमें ले चलिए।

'पदवी' तो सद्भक्तिही है। भगवान्के चरणोंमें अनुरागही परमपद है। उनके चरणों से जिसकी बुद्धि विचलित नहीं होती, जिसका मन नहीं डिगता, वही प्रशंसनीय है।

सन्त त्यागराय

सत्संगही जीवन है, सुख है, शान्ति है

"तुलसी संगति साधुकी,
हरै औरकी व्याधि ।
ओछी संगति क्रूरकी,
आठों पहर उपाधि ।"

सत्संग सार

संकलनकर्ता, श्रीरामनरेश दीक्षित

नाम-जप या स्वरूपका चिन्तन—दोनों में से एक तो अवश्यही करना चाहिये ।

जीवनका एक-एक क्षण, श्रद्धा और प्रेमके साथ परम प्रेमास्पद परमात्माके चिन्तनमें लगाना चाहिए ।

चिन्तन करते-करते भगवान्‌की दया से, किसी भी क्षण हमें भगवत् प्राप्ति हो सकती है ।

प्रेम स्वार्थरहित होना चाहिये । स्वार्थरहित प्रेमसे ही परमात्माकी शीघ्रही प्राप्ति होती है ।

धर्मका पालन करते हुये मृत्युभी हो जाय, तो कोई चिन्ता नहीं, बल्कि उसमें महान् लाभ है ।

घरमें जो बड़े हों, नित्य प्रातः उठकर उनके चरणोंमें नमस्कार करना चाहिये ।

जीविकाके लिए झूठ, कपट, चोरी कभी न करे । भगवान् सबकी रक्षा करते हैं ।

बुद्धिमान् वही है, जो एक क्षणभी आलस्य और प्रमादमें न बिताकर प्रतिक्षण अपने लक्ष्यपर लगा रहता है ।

कल्याणकामी मनुष्यको उचित है कि, मान और कीर्तिको कलङ्क समझे ।

श्रद्धा, भक्ति और विवेक—वैराग्यपूर्वक निष्काम भावसे अनुष्ठान किया जाय तो एक ही साधन अति शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति करा सकता है ।

जिस किसी क्षण जीवका मन एकान्त भावसे भगवान्‌में लग जाता है, उसी क्षण वह मुक्त हो जाता है ।

वाणीकी शक्ति दो प्रकार से नष्ट होती है—असत्य बोलने से, और व्यर्थके भाषण से ।

विषयोंका चिन्तन सर्वनाशका कारण है और भगवान्‌का चिन्तन सर्वनाशसे बचाकर, सर्वकल्याणका साधन ।

गीतोक्त् कर्मके उपासक तथा संघके भूतपूर्व सदस्य
स्व० श्रीद्वारिकानाथ भार्गव

श्रीकृष्ण-सन्देश के कृपालु ग्राहकोंसे

सहयोगकी प्रार्थना

महानुभाव,

आपने "श्रीकृष्ण-सन्देश" को प्रारम्भसे ही जो प्यार प्रदान किया है, उसके लिये हम आपके बड़े अभारी हैं। निस्सन्देह आपकी स्नेह-शक्ति पाकर ही "श्रीकृष्ण-सन्देश" अपने जीवनके दो वर्ष पूरे करने, तीसरे वर्षमें मासिक रूपसे प्रविष्ट होने और बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं, विद्वानों तथा राष्ट्र-नेताओंका आशीर्वाद पानेमें समर्थ हो सका है।

"श्रीकृष्ण-सन्देश" का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्णके धर्मोपदेशों द्वारा व्यक्ति, समाज और राष्ट्रमें नैतिक बल, पवित्राचरण तथा स्वधर्म-निष्ठा तो बढ़ाना है ही, उनके इतिहास-प्रसिद्ध पावन जन्म-स्थानको भी उनकी महिमाके अनुरूप विकसित करके उसे ऐसा रूप देना है, जिससे कि वह देश-विदेशके जिज्ञासुओंका प्रेरणा-केन्द्र बन जाय। किन्तु इस महान् उद्देश्यकी सम्पूर्ति तभी होगी, जब समस्त श्रीकृष्णप्रेमी "श्रीकृष्ण-सन्देश" को अपना लेनेकी कृपा करेंगे।

अतः हम कृपालु ग्राहकोंसे यह प्रार्थना करते हैं कि आप अपने इष्ट मित्रों और बन्धु-बान्धवोंको "श्रीकृष्ण-सन्देश" के ग्राहक बनानेका अनुग्रह करें। यदि प्रत्येक कृपालु ग्राहक दस-दस नये ग्राहक बना देनेका कष्ट उठावें तो "श्रीकृष्ण-सन्देश" की शक्ति दस गुनी बढ़ जायेगी।

आशा ही नहीं, विश्वास है कि आप सभी कृपालु ग्राहक हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देनेकी कृपा करेंगे।

प्रार्थी—

प्रबन्ध-सम्पादक

"श्रीकृष्ण-सन्देश"

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके लिए देवधरशर्मा द्वारा बम्बई भूषण प्रेस, मथुरामें
मुद्रित तथा प्रकाशित : आवरण-मुद्रक—व्रजवासी फाइन आर्ट ओफसैट वर्क्स, मथुरा।